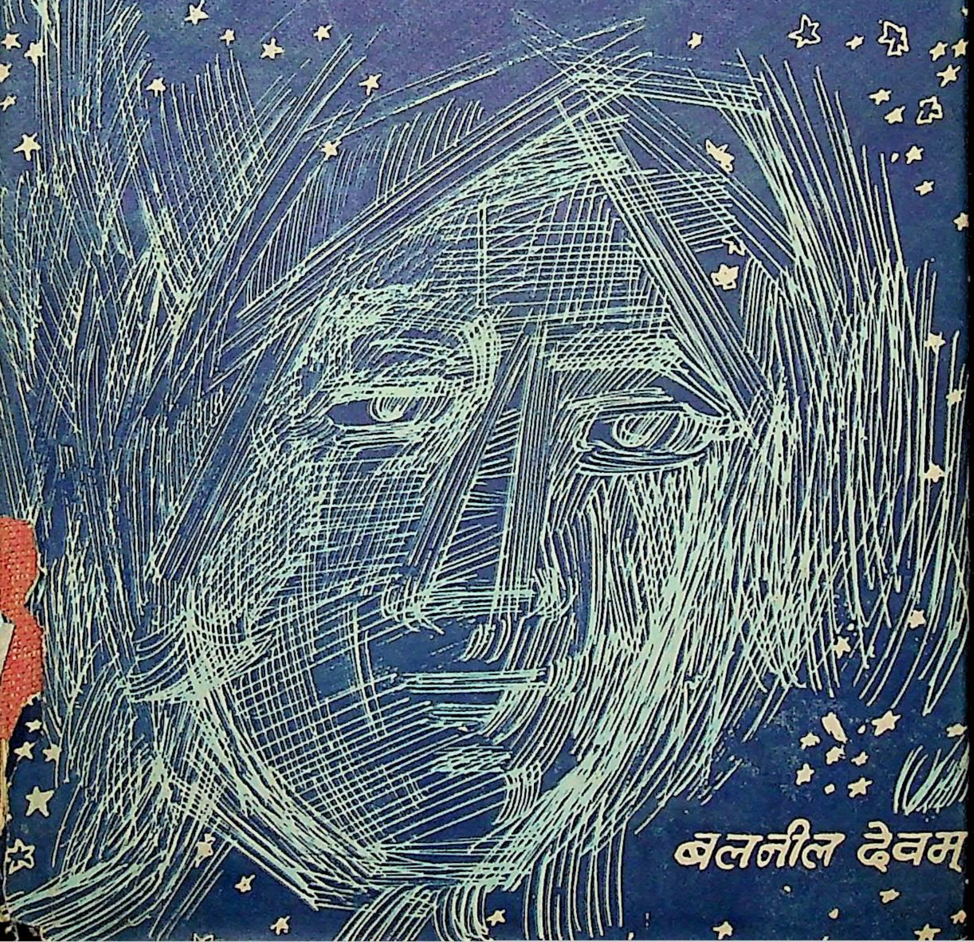
उल्कापात

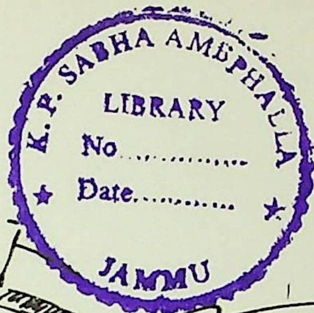


"…… निम्नवर्ग, निम्नमध्यवर्ग के पात्र हमेशा मुझे मेरे अपने लगे हैं। बहुत ही अपने लगे हैं। उनके सुख-दुःख को मैं अपने भीतर चलते हुए महसूसता हूं। वे पात्र मूक होकर यंत्रणाओं, यातनाओं, त्रासदियों को भोग रहे हैं। सदियों से रूढ़ियों, अ-मान्यताओं, कुंठाओं के जाल में जकड़े कसमसा रहे हैं। दसों दिशाओं में छाए अंधकार को दूर कर प्रकाश को पाना चाहते हैं। पर कुछ कर पाने का सामर्थ्य नहीं जुटा पा रहे। भीतर ही भीतर गल रहे हैं। अपनी क़लम द्वारा उनकी ही मूक पीड़ाओं को स्वर दे रहा हूं……"

Donated by
R L Shaw

उल्कापात

निस्तंद्र प्रकाशन



उल्कापात

सारथी

बलनील देवम्



प्रथम संस्करण : 1977

द्वितीय संस्करण : 1980

मूल्य : अट्ठारह रुपये (18-00) © बलनील देवम्

प्रकाशक : निस्तंद्र प्रकाशन, 35-कूचा कर्म चन्द, जम्मू-180001

मुख्य वितरक : सीमांत प्रकाशन, 922-कूचा रुहेल्ला खां, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मुद्रक : प्रभात प्रिंटिंग प्रैस, न्यू ट्रांस्पोर्ट यार्ड, जम्मू

ULKAPAAT *(Short Stories)* **by Balneel Devam—Rs. 18/-**

नीले को

প্রথম প্রকাশ : ১৯৫৭
দ্বিতীয় প্রকাশ : ১৯৫৯
প্রচ্ছদ : [illegible]
প্রকাশক : [illegible] প্রকাশন, [illegible] কলকাতা-[illegible]
মুদ্রণ [illegible]
[illegible]
মুদ্রক : [illegible]

ULLAPAAT (Short Stories) by [illegible] — Rs. [illegible]

संत्रास/कुण्ठा/पीड़ा,
यंत्रणा/जड़ता/तृषा
इन्हीं शब्दों की परिधि में/दलित हो रहा
बन्धु।
मानसिकता से पिचटा
अकर्मण्यता का कीड़ा
कोंचे जा रहा .....

यातना युग की/अन्तर्सिसकियां
मेरी अन्तरात्मा को मथ रहीं।

हे नीलकण्ठ !
आत्मपीड़ित समष्टि के/संताप
हरने का सामर्थ्य
आपके कण्ठ में ही है।

आशीर्वाद दें।

मेरी कथा यात्रा

मेरी लेखन यात्रा का आरम्भ सन् 71 के पूर्वार्द्ध में कहानी से हुआ था। अस्तरीय साहित्य (?) पढ़ते-पढ़ते क़लम हाथ में आ गई और शब्दों का जोड़-तोड़ करते हुए कहानी कहने लगी। कैसे और क्यों लिखने लगा, इसका कोई भी ठीक प्रकार का उत्तर मेरे पास नहीं। अपने आप ही लिखना शुरू हो गया।

शुरू-शुरू में राष्ट्रवादी एवं भावुकता से भरी सामाजिक कहानियां लिखीं, जिनकी संख्या महज़ सात-आठ होगी।

सन् 72 में मैं काव्य की ओर प्रवृत्त हुआ और शनैः शनैः काव्य के अति निकट होता चला गया। अपनी अभिव्यक्ति को व्यक्त करने का एक सहज, सशक्त माध्यम लगा वह।

परन्तु कहानी की ओर से कटा नहीं। अनेकानेक कथानक मस्तिष्क में घुमड़ते रहते। साथ में एक-दो कहानी लिखता रहा। सन् 76 में मैंने एक साथ दस कहानियां लिख डालीं जो मेरे जैसे व्यक्ति के लिए अपने आप में एक उपलब्धि थी।

प्रस्तुत संकलन के लिए सन् 73 से 76 तक लिखी कहानियों में से दस कहानियों का चयन किया है। इन कहानियों के विषय में मैं स्वयं कुछ नहीं कहूंगा। कहानियां आपके समक्ष हैं। हर प्रकार का मूल्यांकन आप ही को करना है।

—बलनील देवम्

35, कूचा कर्म चन्द,
गली डॉ० सोम नाथ,
जम्मू-180 001.

उल्कापात

लक्ष्मी प्रसाद कमरे में न जाकर ज़ीना चढ़ते हुए छत पर चले गए। ज़ीना चढ़ते हुए उनके क़दम इतने धीमे पड़ रहे थे कि 'ठक-ठक' की ज़रा-सी भी आवाज़ इधर-उधर नहीं बिखर रही थी। बस, लकड़ी का ज़ीना उनके वज़न के दबाव से हल्का-हल्का कांप-कांप जाता। वे जानबूझ कर चोरों की भांति नहीं चढ़े थे। इस तरह दबे क़दम चलना चोरों का ही तो काम होता है।

आधा ज़ीना चढ़ जाने के पश्चात् अनायास ही उनका ध्यान इस ओर गया था। एक क्षण वहीं रुक कर वे अपने भीतर पहुंच गए थे। उन्हें लगा था, वे जरूर कोई अपराध करके घर लौट रहे हैं। कुछ ऐसा हो गया है आज उनसे, जिसके कारण वे किसी के सामने पड़ना नहीं चाहते। किसी से नजर नहीं मिलाना चाहते।

यदि ऐसा न होता तो अपने ही घर में इस प्रकार घुसने का मतलब... ...?

छत पर दो नंगी चारपाइयां पड़ी हुई थीं। चारपाइयों के वदन से लटकती हुई रस्सियां, चारपाइयों की ज़िंदगी को दयनीय बना रही थीं। टूटी हुई, बिखरी हुई, खण्डित ज़िंदगी है इन चारपाइयों की। ऐसा लग रहा था, एक दिन ये रस्सियां यूं ही लटक-लटक कर बिखर जाएंगी। कोई कहीं खो जाएगी, कोई

कहीं। चारपाइयों का वास्तविक अस्तित्व ख़त्म हो जाएगा और रह जाएंगे मात्र लकड़ी के चौखटे......और चौखटे भी तो कितने सड़ चुके हैं।

उनकी सारी कमीज़ पसीने से तरबतर हो चुकी थी।

चारपाई पर लेटने से पूर्व उनकी इच्छा हुई कि आज एक बार कमरे में क़ैद अपनी बड़ी बेटी सोना को देखें जोकि पिछले तीन सालों में दो बार ठीक होकर अब स्थायी रूप से पागल हो चुकी है।

एक हद तक अब भी ठीक होने का चांस है परन्तु रुपये कहां से आएं......? बिना रुपये के आज इलाज कहां होता है .....? अगर उनके पास रुपये ही होते तो क्या सोना पागल होती......? कभी नहीं! तब वह पागल ही क्यों होती......?......उसकी फटती जवानी भीतर ही भीतर न घुटती। उसे अपनी इच्छाओं का दमन न करना पड़ता। उन्हें कुचल-कुचल कर दहकना न पड़ता। हिस्टीरिया के दौरों की पहली सीढ़ी से शुरू होकर पागल-पन की अन्तिम सीढ़ी तक न जा पहुंचती।

उल्टी-सीधी बातें करना, घण्टों हंसते, रोते, चिल्लाते रहना, अपने सारे कपड़े फाड़ देना, जिस्म को नोचना शुरू कर देना, बेहोश हो जाना......क्या कुछ नहीं देखा उन्होंने......? देख-देख कर भीतर ही भीतर रोते रहते।

एक दिन मोतिया कह रही थी कि अब सोना बहुत गम्भीर हो गई है। कमरे में जाओ तो घूर-घूर कर देखने लगती है।

उन्हें सोना को देखे हुए ही चार महीने हो गए हैं। देखते ही उनके भीतर कुछ चक्करघिन्नी की तरह घूमने लगता है और तब वे किन्हीं अंधकार भरी खाइयों में लुढ़कते चले जाते हैं। और तब

उन्हें लगता है, बड़ा अजीब लगता है कि अंधकार भरी खाइयों में लुढ़कने के बावजूद भी वे वैसे के वैसे रहते हैं। वे ज़ख्मी होकर तड़प-तड़प कर मर क्यों नहीं जाते......? टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर क्यों नहीं जाते......? ऐसी स्थिति उन्हें बहुत ही भयावह लगती है ; इसीलिए वे उस कमरे में जाने से कतराने लगे थे । सोना के सामने होने से डरने लगे थे ।

और इस समय उनके भीतर ऐसी इच्छा क्यों जागृत हुई दिमाग़ पर ज़ोर डाल कर सोचने का प्रयास करने के बावजूद भी उनको कोई उचित उत्तर नहीं मिला ।

दरवाज़ा बाहर से बंद किया हुआ था। सोच रहे थे, बेचारी बंद कमरे में कैसे रहती होगी......? चौबीसों घण्टे......चारों तरफ़ दीवारें ही दीवारें नज़र आती होंगी । कोई खिड़की भी नहीं और दरवाज़ा हर समय बंद......कमरे में तो पंखा भी नहीं, और सारा दिन छत को कठोर धूप झुलसाती रहती है । उसके प्रति सहानुभूति का प्रकाश-सा फैल गया उनके भीतर ।

उन्होंने आहिस्ता से कुण्डी खोली और दरवाज़े के एक पट को धक्का दिया। वह मौत के मुंह की तरह खुलता चला गया।

कमरे के अन्दर पांव रखते हुए उनकी धड़कन बंध-सी गई। सोना से नज़र मिलने पर क्या होगा......? क्या होगा उसकी नज़रों में......? सामना कर पाएंगे उसका......? क्या कहेंगे उसको......? अपनी बेटी को छाती से लगा पाएंगे......? अगर उसने यूं ही पागलों की तरह हंसना शुरू कर दिया या रोने ही लग गई तो......! कितनी दुरुद्वह स्थिति होगी......?

प्रश्नों की बौछार सहते हुए वे भीतर गए पर भीतर जाने पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। बल्कि एक और ही तरह का दृश्य

वहां पर उपस्थित था।

सोना सिर्फ़ सलवार पहने, कमर से ऊपर एकदम नंगी, हाथ जोड़ आंखें बंद किए मुंह ही मुंह में कुछ बड़बड़ा रही थी। लग रहा था, किसी अज्ञात आराध्य देव की पूजा में संलग्न है। इस समय एक अनिर्वचनीय दीप्ति की रश्मियां उसके चेहरे से प्रस्फुटित हो रही थीं।

यह दृश्य देख कर उनके चेहरे पर आतंक-सा छा गया। वे समझ नहीं पाए कि किस कारण से उनको आतंकित होना पड़ा है। बात तो साधारण-सी थी। पागल कुछ भी कर सकता है। किसी भी स्थिति, किसी भी मुद्रा में सामने आ सकता है। पर अपने आप को समझा नहीं पाए। उनके दिल को कोई अपनी मुट्ठी में जकड़ रहा था।

वे उल्टे पांव लौट आए। टांगें आंधी में कांपते बांसों की तरह थरथरा रही थीं। बमुश्किल चारपाई तक पहुंच पाए और निष्प्राण से होकर चारपाई पर निढाल हो गए। चारपाई चरमरा कर ख़ामोश हो गई।

रह-रह कर वह दृश्य उनकी आंखों के सामने थरथरा रहा था। और उनको दहशत के आकाश की तरफ़ उछाल रहा था। वे अपने आपको असह्य यातनाओं की सलीब पर लटके हुए पा रहे थे; जहां से उनकी मुक्ति असम्भव ही थी। उन्हें लगा, सलीब पर लटके-लटके यंत्रणाओं को सहना ही उनकी नियति बन चुकी है। सदियों से सहते आ रहे हैं......ये यंत्रणाएं इतनी तकलीफ़देह हैं कि सही नहीं जातीं, पर सहनी हैं। किसी भी तरह से..... पर चुपचाप सहने से भी क्या होगा......? लड़ा

भी तो जा सकता है इनसे......जद्दोजहद की जा सकती है।

पुराने ज़माने के लोग कहते थे कि व्यक्ति को कभी भी किसी से हार नहीं माननी चाहिए, ज़ुल्मों से तो कभी भी नहीं। ज़ुल्मों के ख़िलाफ़ लड़ना ही बहादुरी है। उसमें जान भी चली जाए तो रंज नहीं। आदमी को संतोष तो रहता है कि उसने कुछ किया है।

तो क्या उन्हें भी लड़ना चाहिए......? चारों तरफ़ से चल रहे यंत्रणाओं, यातनाओं, त्रासदियों के तीरों का मुकाबला करना चाहिए......क्या वे भी जद्दोजहद करें......? पर ...... अकेले तो वे भी ठहर नहीं पाएंगे। भीतर से जर्जर तो पहले ही हो चुके हैं।

पूनम की इस रात्रि में चांद पूर्ण विकसित नवयौवना की तरह अपनी ज्योत्स्ना की गंध लुटा-लुटा कर अजीब-सा मदहोश कर देने वाला समां बांध रहा था। उनकी दृष्टि चांदी की किरणें लुटाते हुए चांद पर पड़ी तो एकाएक उन्होंने पलटा खाया।

सोना के पागलपन का आतंक और कमरे का दृश्य उनके ज़हन से फिसल कर त्रासदियों की अनेकानेक तहों के बीच जाकर बैठ गया और जो कुछ उभर कर उनके रोम-रोम में समा गया, उसके प्रभाव से श्वेत शीतल चांद सुलगता हुआ लगा। पूनम का खिला हुआ चांद उनको दाग़दार, अपवित्र लगा। आकाश के चांद की तरह ही उनको अपनी बेटी चांद भी दाग़दार और अपवित्र लगने लगी। चांद के आइने में उसका अक्स उभर आया। रोते, बिलखते, आंसू बहाते हुए, लुटे-लुटे से दोनों चांद......

मोतिया को ऊपर बुला कर उससे कुछ बातें करने के लिए ही वे नीचे न जाकर छत पर चढ़े थे। उनका ध्यान नीचे से आ

रही 'खट-पट' आवाज़ों की ओर टिक गया। रजनी के गुस्से में लिपटे स्वर उछल-उछल कर ऊपर आ रहे थे। शब्दों का आशय साफ़ था कि वह अपनी मां से लड़ रही है। मोतिया से लड़ना उसकी आदत हो गई है। हर समय चिड़चिड़ापन उसको घेरे रहता है। अपनी मां को यही कोसती रहती है कि क्यों उसको जन्मा......? अगर पढ़ा नहीं सकते थे, शादी नहीं कर सकते थे तो क्यों पैदा किया......? और ऊपर से काली भैंस-सी शक्ल दे दी। ज़हर क्यों नहीं दे दिया था पैदा करते ही......?

वह बेचारी गऊ बनकर अपनी बेटी के ताने सुनती रहती है। रजनी भी तो पच्चीस की हो गई है। ताने देगी भी क्यों न......? बड़ी बहन सोना का अंजाम उसके सामने ही है।

रजनी से छोटी सविता मां को कुछ नहीं कहती। बल्कि वह तो अपनी मां से हमदर्दी रखती है। तभी तो दसवीं के बाद नौकरी करने लगी है और तनख्वाह लाकर मोतिया के हाथों पर रख देती है। पर कल को उसे भी शादी की ज़रूरत महसूस होगी ही। पुरुष के सामीप्य की ज़रूरत पड़ेगी। ज़िन्दगी की बहुत बड़ी ज़रूरत है यह भी। और व्यक्ति की कोई ज़रूरत पूरी न हो तो उसकी मानसिकता पर वह भूत की तरह चिपक जाती है। हर समय उसको कचोटती रहती है और व्यक्ति की हालत होना या रजनी का रूप धारण कर लेती है।

और फिर चांद, कंचन, कल्पना......

'ओह! चांद!' उनके सामने फिर सुलगता हुआ दाग़दार, अपवित्र चांद उभर आया।

"मोतिया ऽऽऽऽ......" लेटे-लेटे ही उन्होंने पत्नी को बुलाने के लिए यह शब्द नीचे की ओर फैंका।

"ओ मोतिया, सुनती हो ऽऽऽ......"

लकड़ी का ज़ीना 'ठक-ठक' के स्वर उगलने लगा। लक्ष्मी प्रसाद ने समझ लिया कि मोतिया ऊपर आ रही है। वह हमेशा पांव पटक कर ही ज़ीना चढ़ती है। उसकी स्थूल देह से वैसे ही ज़ीना थर-थर कांपने लगता है। और अब भी जबकि वह प्रसवावस्था में है, पांव पटक कर चढ़ रही है।

भगवान् से वे यही प्रार्थना करते रहते हैं कि अबके एक लड़का दे दो वरना कब तक मोतिया यह सब सहती रहेगी...?

अब उसकी उम्र बच्चे पैदा करने की नहीं। लोग भी बातें करते हैं कि जवान बेटियों को तो घर पर बिठा रखा है और खुद जनती जा रही है।

पर लोग उनका दुःख समझते ही नहीं। उनकी इच्छा एक लड़के की है। इसी लड़के की 'रट' ने घर में लड़कियों का ढेर-सा लगा दिया है। लड़के का मोह जाता ही नहीं।

दो लड़के हुए भी पर दोनों ही शीघ्र ही जहां से आए थे, वहीं चले गए। अगर बड़ा लड़का इस समय ज़िंदा होता तो रजनी से बड़ा होता। सत्ताइस साल का भरपूर जवान......उनके कन्धों का बोझ उसने सम्भाल लिया होता। उसको याद करके उनका मन भर आया।

"आज आप नीचे न आकर सीधे ऊपर ही चले आए। तबीयत तो ठीक है न आपकी......?" मोतिया उनके सिरहाने भूमि पर बैठ गई। दाएं हाथ की उंगलियों को उनके बालों में घुमाने लगी। उनको बालों में उंगलियां घुमाना बहुत-बहुत अच्छा लगता है, यह वह जानती थी।

पर इस समय उनको कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था।

"नीचे महाभारत चल रहा है ना .....मोती, ग्राखिर ऐसा कब तक चलता रहेगा......? मुझसे अब नहीं देखा जाता......।" उनका स्वर पिघला हुग्रा था।

"ग्राप क्यों चिंतित होते हैं......? घर-गृहस्थी में तो ये सब चलता ही रहता है। यूंही रजनी ग्रौर सविता लड़ रही थीं। रजनी का चश्मा टूट गया है। कल उसको नया चश्मा ला दें .."

लक्ष्मी प्रसाद ने मोतिया की ग्रोर देखा। इतना सब कुछ होते हुए भी कितने विश्वास के साथ, कितने संयम के साथ बात करती है। रजनी चाहे इसको हर समय कोसती रहती है पर इसने कभी भी उसकी शिकायत नहीं की। ग्राखिर मां है न...

मोतिया ही तो है जो उनको बार-बार संभालती है। उनका सहारा बन कर चल रही है। उनके दु:ख-दर्द में बराबर की हिस्सेदार बनती है वरना वे कब के टूट कर बिखर चुके होते। खण्ड-खण्ड हो चुके होते......

उन्होंने ग्रपने बालों में घूमता मोतिया का हाथ ग्रपने दोनों हाथों में ले लिया ग्रौर ग्रपने सीने पर टिका कर ग्रपने दोनों हाथ उस पर रख दिए।

"मोतिया......"

"हूं।"

पर जो वे बोलना चाहते थे, बोल नहीं पर रहे थे। भीतर की बात भीतर ही चक्कर काट-काट कर उन्हें उद्विग्न कर रही थी। दृष्टि ग्राकाश पर टंगे चांद पर टिकी हुई थी। सुलगता हुग्रा दाग़दार, ग्रपवित्र चांद उनकी ग्रांखों में उतर ग्राया था ग्रौर उनकी नसों को जलाए जा रहा था।

"ग्राप शायद कुछ कहना चाहते हैं......? क्या बात है......?

कहिए न……" मोतिया अपने स्वर में प्यार में लिपटे आग्रह को घोलती हुई बोली।

"हां मोतिया, कहना तो चाहता हूं पर कहूं कैसे ? अपने किए का तो ही भोग रहा हूं।" लगता था, वे रो ही पड़ेंगे।

मोतिया सहम गई। न जाने क्या बात इनकी आत्मा को डस रही है…? पर अपने आपको संयत करती हुई बोली—"ऐसी भी क्या बात हो गई……? बताइए न ! आपको मेरी मरी की क़सम……"

"न-न मोतिया, ऐसी क़सम मत उठाओ…" वे चौंक कर उठ बैठे। मोतिया का हाथ अभी तक उनके दोनों हाथों में दबा पड़ा था।

"तो फिर बताइए न ! किस बात से आप इतने ग़मगीन हो रहे हैं……?"

"आज मैंने चांद को एक लड़के के साथ करोल बाग़ में घूमते देखा है। वह स्कूल न जाकर उसके साथ घूम रही थी।"

"ओह! मैं भी कहूं कि आजकल चांद इतनी खुश क्यों रहती है ? हर समय खिली-खिली, महकी-महकी उड़ी फिरती है। यही समझती थी कि लड़कपन है। ऐसी उम्र में कोई चिंता तो रहती नहीं। खाया-पिया, गप्पें हांकी, सो लिया और घूम लिया। पढ़ाई की चिंता नहीं होती। और एक दिन वह सूट का कपड़ा भी लाई थी। कह रही थी, उसकी एक सहेली ने दिया है। उसका जन्म दिन था, इसी खुशी में। सविता ने हाथ क्या लगा दिया, उसके साथ लड़ ही पड़ी थी। किसी को भी हाथ तक नहीं लगाने देती। ज़रुर उसी लड़के ने लेकर दिया होगा……" परेशानी की चंद रेखाएं मोतिया के चेहरे पर भी फैल गईं।

"मैं काफ़ी देर तक उनका पीछा करता रहा था। एक बार तो इच्छा हुई थी कि उस लड़के को पकड़ कर पीटना शुरू कर दूं या पुलिस स्टेशन ले जाऊं जो मेरी इज़्ज़त को सरेग्राम उछाल रहा है, मुझे भरे बाज़ार में नंगा कर रहा है। पर यह सोच कर कि कहीं चांद वहीं भड़क उठी कि उसकी हालत भी सोना और रजनी जैसी करना चाहते हैं। वह सोना या रजनी नहीं, चांद है। वह अपनी ज़िंदगी की मालकिन खुद है, चाहे जो करे, तो क्या मैं ये सब सुन पाता......? सुन कर ज़िंदा रह पाता......? ये जो शब्द मेरे दिमाग़ में आए थे, उन्हीं के खौफ से मैं कुछ कर न सका। दोनों का पीछा करता रहा। दोनों काफ़ी देर तक दुकानों पर, बाज़ारों में घूमते रहे और फिर एक होटल में चले गए। मैं थोड़ी देर होटल के बाहर खड़ा होटल को देखता रहा। उस समय मैं विचार शून्य हो गया था। कुछ भी सुझाई नहीं दे रहा था। मैं पिटे हुए पहलवान की तरह गर्दन लटकाए लौट आया। काम पर वापस जाने की भी इच्छा नहीं हुई और वहीं एक पार्क में सारा दिन लेटा रहा।" उनकी आत्मा को जो बात डस रही थी, वह बाहर निकल आई।

लक्ष्मी प्रसाद द्वारा कही गई बात का असर वातावरण में फैल गया था। वातावरण भारी-भारी हो गया था। कुछ क्षण तक दोनों अपने-अपने भीतर सिमटे हुए बैठे रहे। न जाने सोच की कौन-सी घाटियों में भटक रहे थे पति-पत्नी।

एकाएक लक्ष्मी प्रसाद बोले—"अगर चांद ने कुछ उलटा सीधा कर लिया तो......कहीं मुंह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहेंगे हम। अगर तुम कहो तो उस लड़के को पकड़वा दूं। चांद अभी नाबालिग़ है। नाबालिग़ को फुसलाने के जुर्म में पकड़वाया जा

सकता है। पर पहले चांद की डाक्टरी रिपोर्ट लेनी पड़ेगी।"

"नहीं-नहीं, यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं तो इसे सुनहरी मौक़ा समझती हूं और आप इसे ठोकर मार रहे हैं।" मोतिया कोई दूरगामी बात सोच रही थी।

"मैं तुम्हारा मतलब समझा नहीं......" लक्ष्मी प्रसाद अचकचा कर बोले—"कैसा सुनहरी मौक़ा ?"

"क्या आप नहीं सोचते कि सोना पागल हो चुकी है। रजनी चिड़चिड़ी हो गई है और रोज़ ही लड़ना उसका काम हो गया है। सारा दिन भीतर ही भीतर घुलती रहती है। आखिर क्यों......? शादी न होने के कारण......शादी क्यों नहीं होती ? इसीलिए न कि अपनी अग्रवाल बिरादरी में हज़ारों और लाखों रुपये देकर लड़की देनी पड़ती है। हज़ारों और लाखों......हैं हमारे पास हज़ारों, लाखों रुपये...? रजनी, सविता, चांद, कंचन, कल्पना... कैसे होंगी इन पांचों की शादियां ? कहां से आएंगे इतने रुपये जबकि आपकी तनखवाह पौने तीन सौ है। क्या सोना की तरह ही पांचों लड़कियां भी पागल होकर घर में बंद हो जाएं...कोठरी में क़ैद हो जाएं......दीवारों से सर टकरा-टकरा कर ख़त्म हो जाएं......।"

"तो फिर तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूं ? अगर लड़कियां न भी हुईं पर मैं ज़रूर पागल हो जाऊंगा......।" उनकी आंखें भर आईं, लेकिन आंसुओं को बाहर न निकलने दिया। वहीं पी लिया आंसुओं को।

"मैं तो कहती हूं अगर दोनों शादी के लिए राज़ी हों तो दोनों की शादी कर दी जाए।"

"पर लड़के की जात......"

"जात-बिरादरी जाए भाड़ में। अब जाति देखने का समय नहीं। और हमें जाति से लेना भी क्या है......? हमें अपनी जाति ने दिया भी क्या है...... ? जात-बिरादरी की बातें अब पिछड़ी बातें हो गई हैं।" मोतिया विचारों से एकदम प्रगतिवादी हो गई थी।

"और अगर लड़के के घर वाले न माने तो..." निम्नमध्य-वर्गीय संस्कारों और शंकाओं के जाल से अभी तक वे पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए थे।

"अगर लड़का राज़ी हो जाए तो घर वाले भी मान जाएंगे। लड़के घर वालों को मनवा ही लेते हैं। मैं चांद से उसके बारे में सब कुछ पूछ लूंगी। आप किसी दिन लड़के और उसके घर वालों से बात कर आइए......कम से कम एक का तो बोझ हटेगा। मैं तो कहती हूं रजनी और सविता भी इसी तरह अपने-अपने पति ढूंढ लें तो सारी चिंताएं दूर हो जाएं।"

मोतिया के दिल में एक नई आशा चमक रही थी। सविता तो चांद से ज़रूर प्रेरणा ले लेगी। वह नौकरी करने वाली है, कहीं न कहीं अपना जुगाड़ बिठा ही लेगी। खुद नौकरी करती है, क्या हुआ जो अस्सी रुपये मिलते हैं ? न होने से तो अच्छे ही हैं और फिर बढ़ भी तो सकते हैं। सोना पागल हो चुकी है। उसकी ज़िंदगी तो अब बंद कमरे में ही बीतेगी और कंचन तथा कल्पना अभी बच्चियां हैं। चिंता है तो रजनी की, बेचारी न पढ़ी हुई है और न ही शक्लो-सूरत से सुन्दर है। खैर ! जिस परमेश्वर ने पैदा किया है, वह कोई न कोई हल निकाल ही देता है।

"रजनी और सविता के होते हुए चांद की शादी कैसे कर दें ? अभी चांद की उम्र भी तो शादी के लायक नहीं हुई।" वे फिर

उभर कर सामने आए।

"बात पक्की हो जाए तो शादी साल दो साल बाद भी हो सकती है। चांद इतनी सुन्दर तो है ही कि वह उसको छोड़ नहीं सकता। साल दो साल इंतज़ार कर ही सकता है और अब हमें यह नहीं सोचना है कि बड़ी के होते हुए छोटी की कैसे कर दें? जिसका भी मौक़ा लगता है, उसकी कर देनी चाहिए।"

वे चुप होकर ख़ामोशी के सागर में डुबकियां लगाने लगे। मोतिया से वे पूरी तरह सहमत नहीं हो पाए थे, पर वे जानते थे कि उन्हें मोतिया के अनुसार ही करना होगा। मोतिया हर बात को तोल-परख कर ही कहती है।

"आप भोजन नहीं करेंगे क्या......? चलिए नीचे......।"

"आज भूख मर-सी गई है।" उनका स्वर अभी तक चिंताओं के जाल से मुक्त नहीं हो पाया था।

"तो इसका मतलब है आपने दोपहर का भी भोजन नहीं किया होगा। टिफिन तो वहीं दुकान पर पड़ा होगा .....।"

वे कुछ नहीं बोले।

"चलिए, एक चपाती ही खा लें।" चारपाई का सहारा लेकर मोतिया उठ खड़ी हुई।

तभी उसकी दृष्टि कमरे की ओर चली गई। वह हतप्रभ रह गई। कमरे का दरवाज़ा खुला हुआ था और सोना दरवाज़े की टेक लगाए उन दोनों को घूर-घूर कर देखे जा रही थी। न जाने कब से खड़ी थी..... ?

मोतिया को अपनी तरफ़ देखते पा वह अन्दर चली गई।

"दरवाज़ा कैसे खुला रह गया......?" मोतिया अपने से बोली।

"मैंने खोला था, पर बंद करने का ध्यान ही नहीं रहा..." उनको याद आया कि सोना की समाधि वाली अवस्था देख वे दरवाज़ा बंद करना ही भूल गए थे। अब सोना ने कमीज़ पहन ली थी लेकिन उल्टी।

मोतिया ने दरवाज़ा बंद कर दिया।

दोनों नीचे चले गए।

"चांद बेटी, आज तुम स्कूल न जाओ। थोड़ा-सा काम है तुमसे......।"

"पर मां जी, आज स्कूल में एक ज़रूरी लैसन है। सब को ज़रूर आने के लिए कहा गया है....." चांद ने मां के आगे लैसन का बहाना बनाते हुए कहा। आज उसने सुकेश की कोठी पर जाना था। जब-जब वह सुकेश की कोठी पर जाती थी, वह उसे कोई न कोई तोहफ़ा देता था।

"आज घर पर भी एक ज़रूरी लैसन है और स्कूल के लैसन से बहुत ही ज़रूरी है यह लैसन ....." मोतिया भीतर ही भीतर मुस्करा रही थी। चांद जब उसकी बात सुनेगी तो पहले तो उस की सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाएगी पर जब उसका निश्चय सुनेगी तो खुशी से नाचने लगेगी।

"मेरी अच्छी मां जी, आज जाने दो मुझे तुम कल दे देना लैसन या जब मैं स्कूल से आऊं तब .....।" मोतिया को मनाने के लिए प्यार भरे आग्रही स्वर में बोली। उसने सुकेश से वादा किया हुआ था आने का।

"बिल्कुल नहीं......" वह दृढ़ स्वर में बोली—"आज और अभी देना है .....।"

चांद रूठ कर ज़मीन पर बिछी दरी पर जा बैठी। मोतिया कनखियों से उसकी ओर देखे जा रही थी।

सारी बेटियों में चांद ही खूबसूरत है। खिलता हुआ रंग और तीखे-तीखे नैन-नक्श। भरा-भरा शरीर...चेहरे से मासू-मियत-सी टपकती रहती है हर समय। लेकिन बोलने में तेज़ तर्रार। वह चांद को ही सबसे ज़्यादा चाहती है। उसके हृदय का टुकड़ा है चांद।

कोई भी तो उसके हृदय के टुकड़े से प्यार कर सकता है। अभी तेरह साल की ही हुई है पर सोलह से कम नहीं लगती।

सविता अपने स्कूल चली गई पढ़ाने के लिए। कंचन वहीं पढ़ती थी। वह भी सविता के साथ ही चली गई। लक्ष्मी प्रसाद भी अपने काम पर चले गए।

मोतिया ने साफ़ देखा था कि उनका चेहरा अभी तक व्य-वस्थित नहीं हो पाया। वे अभी भी भीतर से टूट रहे हैं। चांद की ओर तो उन्होंने देखा भी नहीं था। आदत के अनुसार सुबह ही सुबह उठे थे और घूमने के लिए निकल गए थे। वापस आ, नहा कर जल्दी से नाश्ता किया और दुकान पर चले गए। आज खाना भी नहीं ले गए। कल टिफिन दुकान पर ही रह गया था।

SABHA AMBPHALLA LIBRARY JAMMU

जब सब चले गए तो मोतिया को अपनी बात कहने का अवसर मिल गया। रजनी रसोई में खाना बना रही थी। मोतिया जानती थी कि वहां तक उनकी आवाज़ पहुंच नहीं सकती। जब तक बात किसी मंज़िल तक न पहुंच जाए, वह खोलना नहीं चाहती थी। इसीलिए एहतियात से काम ले रही थी।

"मेरे चांद! मेरे पास तो आओ......" मोतिया मुस्कराती हुई बोली।

चांद उसी मुद्रा में बैठी रही। बल्कि मां के मुलायम शब्द सुन कर उसकी आंखों में आंसू उतर आए।

"अरे, मेरा चांद रोने लगा। अभी तुम्हें हंसने वाली बात सुना दूं तो......पर पहले मेरे पास आओ।"

चांद न उठी। वह अपनी ज़िद्द की बहुत पक्की है, मोतिया को मालूम था। इसलिए मोतिया को ही उठना पड़ा। बार-बार उठने-बैठने से तकलीफ़ सहना उसके लिए मामूली बात हो गई थी। दरी पर उसके पास ही बैठ गई।

"चांद, एक बात पूछूं, सच-सच बताना......वह सूट तुम कहां से लाई थी......?" मोतिया के स्वर में उत्सुकता थी।

चांद चौंकी। एकाएक मां को सूट का ध्यान कैसे आ गया......? कहीं पता तो नहीं चल गया। पर वह बोली नहीं। गुमसुम-सी बैठी रही।

"बताओ न बेटी, किसने दिया था वह सूट .....?"

"कहा तो था कि मेरी सहेली ने दिया है।" स्कूल न जाने की वजह से वह अभी तक गुस्से से भरी बैठी थी।

"अपनी माँ से भी झूठ बोलोगी......" उसका स्वर वात्सल्यपूर्ण था।

चांद ने मां की आंखों में देखा। वहां उसे पवित्रता ही पवित्रता दिखाई दी। एक मां की-सी पवित्रता .....एक देवी की सी पवित्रता।

उसने तत्काल ही नज़रें हटा लीं। उसमें हिम्मत नहीं थी कि दृष्टि मिलाए रखे। उसकी रुलाई फूट आई। मोतिया की गोद में सिर डाल सिसकियां भरने लगी। मोतिया उसके सिर पर स्नेह भरा हाथ फेर रही थी।

"मां जी, मैंने तुम से झूठ बोला, तुम्हें धोखे में रखा। मैं पापी हूं, गुनहगार हूं। मुझे चाहे जो सज़ा दे दो। चाहे मार डालो मुझे......।" वह गोदी में सिर दिए रोए जा रही थी।

मोतिया ने गोदी में से उसका सिर उठाया। अपनी धोती के पल्लू से उसकी आंखें तथा नाक पोंछी।

"कौन है बेटी वह..... ? क्या करता है......? कहां रहता है......? तुमने हमें पहले ही क्यों नहीं बता दिया .....? अपनी बेटी की इच्छा के ख़िलाफ़ हम भला कोई काम कर सकते हैं। तुम्हारे बाऊ जी को भी पता है। उसका पता बता दो तो किसी दिन तुम्हारे बाऊ जी उसके घर हो आएं। तुम्हारी शादी की बात करने के लिए......।" मोतिया चांद को हक्की-बक्की देख हंस पड़ी।

"म......म......मां जी .....क्या सच .....? मेरी शादी ...सुकेश से . बाऊ जी को पता चल गया। कैसे पता चला...? उन्होंने कुछ नहीं कहा। ज़रूर तुमने बाऊ जी को मना लिया होगा......ओ मेरी मां ! तुम कितनी अच्छी हो। एक देवी हो देवी......।" चांद नाच-सी उठी। लगा, उसको तो जैसे कोई खज़ाना मिल गया हो। वह हर्ष से इतनी पागल हो उठी कि भावावेश में उसने मोतिया को अपनी बांहों में लपेट लिया।

"अरे, अरे, अरे .....यह क्या करती हो......? छोड़ मुझे। इधर देखती नहीं ....." मोतिया ने अपने बढ़े हुए पेट की तरफ़ इशारा किया। उसके गर्भ के आख़िरी दिन चल रहे थे।

"मां जी, तुमने बात ही ऐसी सुनाई है कि मैं पागल हो उठी हूं। और अब एक बात और मान लो। इस बार हमें एक भाई दे दो न......" खुशी से पागल चांद शरारत भरे मासूम स्वर में

बोली ।

"चल हट, शैतान कहीं की ! शर्म नहीं आती अपनी मां से ऐसी बात कहते हुए......।"

चांद खिल-खिल करती हंस पड़ी ।

उन्होंने दुकान से एक घण्टा पूर्व ही छुट्टी ले ली । आज उन्हें सुकेश के घर वालों से मिलना था । यही नाम बताया था चांद ने..... उनकी कोठी पंजाबी बाग़ में थी ।

उस घटना को बीते पन्द्रह दिन हो चुके थे । उनको हर दिन वर्ष के समान लगा था । हर समय यही सोचते रहते कि कहीं लड़के ने या उसके घर वालों ने इनकार कर दिया तो......वे बड़े लोग हैं । पैसे की चमक-दमक है । कुछ भी कर सकते हैं ।

पर आज वे दिल कड़ा करके निकल ही पड़े थे । ज़्यादा देर करना उन्होंने उपयुक्त नहीं समझा था । कहीं मौक़ा हाथ से निकल न जाए......।

बस पकड़ वे पंजाबी बाग़ पहुंच गए । पता उन्हें याद था—'डी/17/108, राय कॉलोनी, पंजाबी बाग़ ।'

लगभग पन्द्रह मिनट उन्हें कोठी ढूंढने में लग गए । हल्का-हल्का अंधेरा घिर आया था । साफ़ सुथरी सड़कों पर मर्करी ट्यूब जगमगा उठीं ।

बड़े-बड़े परिवारों के लोग सैर को निकले हुए थे । चारों तरफ़ गहमागहमी थी । खुशबू के झोंके आ-जा रहे थे । ठहाके लगाते मर्द-औरतें, रंग-बिरंगे फैशनों में लिपटे युवक-युवतियों के ग्रुप्स, एक-दूसरे के पीछे भागते नन्हे-नन्हे, प्यारे-प्यारे बच्चे, पाम को घसीटती हुई आयाएं......।

ये सब देख लक्ष्मी प्रसाद हीन भावना से ग्रस्त हो गए। निम्नमध्यवर्गीय ज़िंदगी की हीनता में वे घुलने से लगे। कितना खुला हुआ स्वतन्त्र और मस्त जीवन है इन लोगों का......एक अलग प्रकार की खुशबूदार दुनिया दिखाई देती है।

पर वे तो दूर से ही देख सकते हैं। एक सिनेमा की तरह... सिनेमा में भी आदमी सब कुछ देखता है, महसूसता है पर भोग नहीं सकता। सब कुछ भोग लेने का सामर्थ्य कहां होता है आदमी में......।

उनके यहां तो सुबह घर से निकलो तो रोना-चीख़ना मचा होता है। चारों तरफ़ चख-चख, चख-चख......सारा दिन दुकान पर ग्राहकों से सिरदर्दी करो और जब शाम को घर आओ तो फिर वही घुटा-घुटा, चीख़ता वातावरण......सब कुछ सहमा-सहमा, जकड़ा हुआ......।

चांद तो अब इन्हीं लोगों के बीच आकर जियेगी। उनकी बेटी चांद......उनको थोड़ा-सा संतोष हुआ।

वे उस कोठी के सामने थे जो चांद ने बताई थी। चारों तरफ़ ख़ामोशी छाई हुई थी। बाहर का गेट बंद था। अन्दर बरामदे में एक बल्ब जल रहा था।

मर्करी ट्यूब की रोशनी में उन्हें गेट पर लगी घण्टी दिखाई दे गई। उनका हाथ उस पर जा पड़ा। किसी प्रकार का भी स्वर उन्हें सुनाई नहीं दिया। उन्होंने फिर बटन दबाया पर 'टर्न-टर्न' नदारद......उन्होंने सोचा, शायद खराब है। तभी भीतर से एक आदमी बाहर निकलता हुआ दिखाई दिया।

वे अपना कुरता-पायजामा ठीक करने लगे। हाथ में पकड़े एल्युमिनियम के टिफिन को उन्होंने गेट के एक कोने में रख

दिया। यह सोच कर कि अगर उनको अन्दर आने के लिए कहा गया तो टिफिन को अन्दर ले जाना कितना भद्दा लगेगा। वापस जाते हुए उठा ले जाएंगे।

वह आदमी गेट खोल कर उनके पास आ खड़ा हुआ—"कहिए, किससे मिलना है आपको ?"

"जी, सुकेश के पिता जी से।"

"सुकेश, कौन सुकेश..... ?" आदमी आश्चर्य से बोला।

"वही, जो यहां रहता है।"

"यहां तो कोई सुकेश और उसके पिता जी नहीं रहते।"

"पर मेरी बेटी ने पता तो यहीं का बताया था......" उन्हें भी आश्चर्य हो रहा था कि ऐसा कैसे हो गया ? चांद ग़लत पता तो बता नहीं सकती।

"क्या पता बताया है......?"

"डी/17/108, राय कॉलोनी......"

"पता तो यहीं का है, पर आपकी बेटी ने बताया है मैं कुछ समझा नहीं......" उसने उनकी ओर प्रश्न फेंका।

"मेरी बेटी है चांद। वह एक लड़के सुकेश को चाहती है। उसके साथ दो-तीन बार इसी नम्बर की कोठी में आई भी है। उसने बताया था कि यही उनकी कोठी है।" लक्ष्मी प्रसाद की टांगें न जाने क्यों थर-थर कांपने लगी थीं। उनका चेहरा आतंकित हो और काला पड़ने लगा।

"ओह ! तो अब समझा......" वह आदमी ठहाका मार कर हंस पड़ा—"साहब" ! यहां रोज़ के कितने ही सुकेश आते हैं और न जाने कितनी चांदें उनके साथ आती हैं। यह बंगला उन सभी का है। लेकिन कुछ घण्टों के लिए ही......उनके अपने

मकान, बंगले कहीं और होते हैं। जो जानती हैं, वे इस बंगले को अपना नहीं समझतीं और जो नहीं जानतीं, वे अपने साथी के साथ इसी बंगले में उम्र भर रहने के ख़्वाब देखने लगती हैं। वे लड़के इसी को अपना बंगला बताते हैं ताकि असलियत क्या है, कोई जान न सके.........पर जितनी देर यहां रहते हैं उतनी देर का किराया देकर खिसक जाते हैं....."

लक्ष्मी प्रसाद के कानों में पिघला हुआ शीशा उतर रहा था। उनके टुकड़े-टुकड़े करके कोई उन्हें हवा में उछाल रहा था। उन्हें लग रहा था, किसी ने उनकी चमड़ी उधेड़ दी है और उनके शरीर को एक चौराहे पर लटका दिया है। टप-टप करता हुआ खून रिस रहा है और चारों तरफ़ से एक भीड़ टूट पड़ी है जो उनके खून को चाट रही है। उनके मांस को नोच-नोच कर स्वाद से खा रही है......और वे अपनी आंखों से ये सब देख रहे हैं। उन्हें देखने के लिए मजबूर कर दिया गया है।

लक्ष्मी प्रसाद पीछे की ओर मुड़ते हैं। चलने को होते हैं पर पांव उठ नहीं पाते। लगता है, तारकोल से चिपक गए हैं या कीलों से ठोक दिए गए हैं। कहां जाएंगे वे......? घर क्या मुंह लेकर जाएं......? मोतिया को क्या कहेंगे......? क्या बताएंगे उसे......यही कि 'हम क़दम-क़दम पर छले जा रहे हैं। निरन्तर लुटते चले जा रहे हैं। और यही सब होता रहेगा।'

कल रात से ही उसको दर्द हो रहा था। अपनी बहन को बुला लिया था उन्होंने। कहीं ज़्यादा तकलीफ़ न हो जाए
कोई अनुभवी औरत तो होनी ही चाहिए पास

उन्होंने गेट बंद होने की आवाज़ सुनी।

इधर उनके ज़हन के सारे गेट बंद हो चुके थे और कुछ

था जो उनके ज़हन में क़ैद तड़प-तड़प कर सिर पटक रहा था।

वे मन-मन भारी पांवों को घसीट कर चलने लगे।

बंगले के गेट के एक कोने में एल्युमिनियम का पुराना-सा टिफिन मर्करी ट्यूब की रोशनी में अपने भद्दे-भद्दे धब्बे दिखा रहा था।

बड़े परिवारों के लोग अभी तक सैर करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे।

रात दस बजे के क़रीब वे घर लौटे।

थके-थके, हारे-हारे से......बिखरा हुआ चेहरा, बिखरे हुए बाल......उनको तो सब कुछ बिखरा-बिखरा लग रहा था। हर चीज़ अपने स्थान से हटी हुई। चारों तरफ़ एक बदलाव हो गया था।

उसी दिन की भांति वे चुपके से ज़ीना चढ़ गए। मोतिया के दर्द का क्या हाल है और क्या हुआ......? इसकी कोई ख़बर न ली।

ऊपर चारपाई पर चांद लेटी हुई थी। उनको देख जल्दी से उठी और नीचे भाग गई। वह तब से ही उनके सामने आने से कतराने लगी थी।

वे उसको कुछ भी कह न पाए। क्या कहते......? सब तक़दीर के ही खेल हैं।

वे कटे वृक्ष की भांति चारपाई पर गिर पड़े। आंखों को ज़ोर से भींच लिया। चारों तरफ़ अंधकार की स्याह घाटियां थीं। काला-काला भयावह अंधकार......

"लक्ष्मी......।"

उन्हें आंखें खोलनी पड़ीं। उनकी बहन पास खड़ी थी। चेहरे पर गम्भीरता की तह चढ़ी हुई थी।

"इस बार फिर लड़की हुई है ....."

अमावस की गहरी रात में उन्होंने देखा कि एक के बाद एक दो तारे टूट कर, रेखा-सी बनाते हुए गिरे हैं, पर आकाश और पृथ्वी के मध्य ही कहीं खो गए हैं।



आकाश के टुकड़े

उसने फुंकनी एक ओर पटक दी। गीली लकड़ियों का धुआं नथुनों एवं मुंह से गुज़रता हुआ फेफड़ों में समा गया। खांसी का एक वेग इधर-उधर उछलने लगा। आंखों में जलन के अनार से फूटने लगे और पानी चूने लगा। छाती की हड्डियां पीड़ा से कसमसा उठीं। उसे ऐसा लगा, किसी ने कोई ज़हरीला इंजेक्शन सीधा उसके फेफड़ों में घुसेड़ दिया हो। कफ़ का ढेर-सा निकला, खून भी साथ लिए। खांसते-खांसते वह निढाल-सी हो कर पसर गई।

बाहर रिक्शा रुकने की आवाज़ आई।

'शेरी आ गया है। अब वह अवश्य नाराज़ होगा। उसने मना किया हुआ है कि मैं रसोई का कोई भी काम न करूं। परन्तु दो बच्चों की मां हूं, बच्चों को बिलखते हुए कैसे देख सकती हूं?'

शेरी रिक्शे को छोटी-सी खुली ड्योढ़ी में ले आया।

भीगे हुए वस्त्रों में वह कमरे में दाखिल हुआ। प्यारी खांसी को दबाने का प्रयत्न करती हुई भीतर ही भीतर खांस रही थी ताकि शेरी उससे अनभिज्ञ रहे। धुएं भरे वातावरण में उसने प्यारी को भीतर ही भीतर खांसते देखा तो सहक उठा। उभर आये गुस्से को दबाने के लिए आदतानुसार ऊपर का होंठ दांतों

में दवा लिया। एक कोने में, अंगीठी में सुलग रही लकड़ियां अभी तक धुआं पैदा कर रही थीं और पास ही फुंकनी पड़ी हुई थी।

उसकी आंखें घूम कर कफ़ के ढेर की ओर चली गईं। कफ़ में मिले खून में उसे प्यारी की मृत्यु के बिम्ब स्पष्टतया दिखाई पड़ रहे थे।

दिसम्बर का महीना और ऊपर से बारिश में लगातार आध घण्टे का भीगा हुआ। सूती ख़ाकी कमीज़ और ज़ीन की नीली पैंट......बाहर तक तो ठण्ड उसके अंग-अंग को जमाये जा रही थी। कंपकंपी से दांत किटकिटाने लगते थे। परन्तु अब उसे ठण्ड का आभास भी नहीं हो पा रहा था।

"क्यों खुद को मारना चाहती हो......?" उसने भीगे हुए क्रोधित स्वर में कहा।

"बच्चे......!" आगे के शब्द खांसी में ही डूब गए। कफ़ का एक और ढेर निकला, जिसमें कफ़ कम खून अधिक......उसने टांगें भूमि पर पसार दीं।

शेरी ने दृष्टि उस ओर फैंकी जिस ओर बच्चे टाट में लिपटे सो रहे थे। बड़े लड़के कीपू ने टांगें घुटनों से सिकोड़ कर पेट के साथ मिला रखी थीं। छोटी मुन्नी उससे चिपटी जा रही थी। उसे अपने पर क्रोध आने लगा। इन बच्चों को पैदा करके उसने अक्षम्य अपराध किया है।

ठिठुरती सर्दी में बिना वस्त्रों के बच्चे (मात्र एक-एक कपड़ा ही) रुग्ण व कृशकाय अवस्था में बीवी...परिवार पर भूख का अनियंत्रित आतंक और आज की कमाई मात्र दो रुपये पैंसठ पैसे......।

एक भीमकाय अट्टहास लगाने की इच्छा हुई; चार जीवों की बेबसी पर......परन्तु गले में एक कांटा-सा उभर आया। आंखों के कोरों से कुछ पिघलने लगा।

उसने आगे बढ़ कर प्यारी को थाम लिया। वहीं भूमि पर बैठ कर प्यारी का सिर गोद में ले लिया।

परिवार का दु:ख देख कर इनसान शारीरिक कष्ट को अपरोक्ष कर देता है। व्यक्तिगत पीड़ाओं को भूल जाता है। बारिश में भीगा हुआ उसका शरीर, गीले कपड़े, कड़ाकेदार सर्दी और सुबह से भूखा......सुबह से क्या कई दिनों से भूखा......आज पेट को चार गिलास पानी, एक कप चाय और एक बण्डल बीड़ियों का धुआं ही दिया है। भूख ही नहीं लगती। भीतर ही भीतर दम तोड़ चुकी है।

उसने प्यारी का ब्लाऊज़ खोल दिया और धीरे-धीरे छाती मलने लगा। खांसी पर अंकुश लगता गया।

शेरी की दृष्टि उसके स्तनों पर जा टिकी। कितने सूख गए हैं......दो अधफूले गुब्बारों से......छोटी मुन्नी अभी डेढ़ मास की भी नहीं हुई। बेचारी बच्ची को भी इसी कोख से जन्म लेना था, जिसे जन्म से ही मां का दूध नसीब न हो। उसका मन तीता हो गया।

उसकी दृष्टि फिर उस ओर जा गिरी जहां दोनों बच्चे सोये पड़े थे। कीपू ने दाईं टांग छोटी मुन्नी के पेट पर रख दी थी। टाट ऊपर से खिसक गया था। मुन्नी सोते में ही हल्की-हल्की सुबकियां भर रही थी।

"तुम गीले कपड़े उतार दो...।" प्यारी ने स्वयं को सम्भाल लिया था।

उसकी दृष्टि फिर प्यारी पर लौट आई। उसने छाती मलना बंद कर दिया। प्यारी ने नंगे अंगों को ढांप लिया।

"तुम्हें पता ही है कि धुआं तुम्हारी सेहत का पहला शत्रु है तो भी तुम......" उसकी आवाज़ अंदर ही अंदर मर गई।

"मुन्नी दूध के लिए तड़प रही थी। सुबह ही उसको दूध पिलाया था। सुबह का जो थोड़ा-सा बचा रखा था वही गर्म करके पिलाने लगी थी ताकि रात को तंग न करे......।"

"कीपू ने कुछ खाया ?"

"वह भी रोता-रोता सो गया है। मैं शाम से ही बहला रही थी कि अभी तुम्हारे बापू आने वाले हैं, खाने की चीज़ें साथ लाएंगे......।"

शेरी का मन वितृष्णा से भर गया। दो रुपये पैंसठ पैसे कमाये थे जिससे वह रोटी का प्रबंध करता, प्यारी के लिए दवाई और फल लाता या रिक्शे का एक्सिल, जो कीचड़ में फस जाने से टूट गया था, उसकी वैल्डिंग के लिए अपने पास ही बचा कर रखता। अगर कल रिक्शा ठीक न होगा तो चलेगा कैसे...? और रिक्शा न चलेगा तो ... और अभी पिछले महीने की किश्त भी नहीं दे पाया। अगर इस महीने भी पैसे न बचे तो रिक्शा ही हाथ से चला जाएगा।

उसने जेब से दो रुपये पैंसठ पैसे निकाल कर प्यारी की हथेली पर रख दिए, साथ ही आंसुओं की दो बूंदें रुपयों पर गिर पड़ीं।

बारिश मानों आज ही सारी बरस जाना चाहती है। मिट्टी से पुती कच्ची छत के एक कोने से पानी रिसना शुरू हो गया है।

LIBRARY No. Date JAMMU

शेरी ने कमरे में फैला सारा सामान छोटी-सी ग्रलमारी में रख दिया ताकि भीग न जाए।

दोनों बच्चों को चारपाई पर सुला दिया है। मुन्नी के पेट में तो थोड़ा-सा दूध पहुंचा है परन्तु कीपू......उसको वह कुछ भी नहीं खिला सकता। ग्राज को तड़पा कर वह कल को सुखी बनाना चाहता है। कल एक्सिल ठीक करवा कर दस रुपये तक भी कमा सकता है। जिससे कीपू के लिए खाना भी ग्रा जाएगा, प्यारी के लिए दवाई तथा फल भी......ग्रौर ग्रव छत पर भी मिट्टी डलवानी पड़ेगी।

वह भी प्यारी ग्रौर बच्चों के पास चारपाई पर बैठ गया। पहले वह भूमि पर सोता था परन्तु ग्राज इसी चारपाई पर चारों को सोना पड़ेगा या उसे रात बैठ कर काटनी पड़ेगी।

जब वह कुंग्रारा था तब भी एक ही चारपाई थी। प्यारी को ब्याह कर लाया तब भी उसी चारपाई पर दोनों सोते थे। कीपू के पैदा होने के बाद उसने भूमि पर सोना शुरु कर दिया था। ग्रब वह दो वर्षों से भूमि पर ही सोता ग्रा रहा है।

उसकी जर्जर ग्रवस्था के साथ-साथ कमरा भी जर्जर हो चुका है, तभी तो छत ने रिसना शुरू कर दिया है।

इनसान के नक्षत्र बुरी दशा में बैठे हों तो सभी ग्रोर से उस पर प्रहार होते हैं।

एक्सीडैण्ट के बाद उसके जीवन का सब कुछ टूट कर बिखर गया है।

एक्सीडैण्ट की याद ग्राई तो उसके सीने में कुछ उबलने लगा। उंगलियां चटखनी शुरू हो गईं। ग्रांखें पनीली हो ग्राईं।

उसको वर्तमान ग्रवस्था समाज ने ही दी है। समाज की

बिगड़ी हुई व्यवस्था ने दी है। परन्तु यह समाज अपना है ही कहां......? कितना अजनबीपन महसूस करते हैं इसमें रह कर के, जैसे ज़बर्दस्ती चिपका दिए गए हों......।

रिक्शा तो लड्डू ही बन गया था। उसका दायां बाज़ू ही टूटा था। न जाने कैसे बच गया था......? शायद अभी और रोना था अपनी ज़िंदगी पर। और कार वाला कितनी सफाई से बच गया था। पुलिस वालों का पांच-सात सौ से काम चल गया होगा। थाने में उसे पीटा भी गया था। रिक्शा ग़लत साईड में होने के कारण हालांकि दोष कार वाले का ही था। टूटे बाज़ू को किसी ने नहीं देखा, बेहोश होने पर सरकारी अस्पताल भेज दिया गया था। एक मास तक अस्पताल में सांसें उमेठता रहा था। बाज़ू ठीक होने से पहले ही छुट्टी मिल गई थी। बाज़ू का दर्द उम्र भर के लिए साथ हो गया था।

उसके पीछे प्यारी ने भी क्या-क्या कष्ट नहीं उठाए। आय का साधन तो मिट चुका था और खर्चे में बढ़ोत्तरी हो गई थी। प्यारी ने धोबी के हां घाट पर कपड़े कूटने का काम ले लिया था ताकि परिवार को विध्वंस होने से बचाया जा सके।

एक के बाद एक अभिशाप उसे समेटते चले गए। अभिशापों की ज़ंजीर ने इस तरह जकड़ लिया था कि जितना वह निकलने का प्रयास करता उतना ही जकड़ता चला जाता।

जहां से पानी चू रहा था, वह सुराख अब कुछ बड़ा हो गया था। मिट्टी के रंग का पानी बड़े आकार में गिर रहा था। पानी सारे कमरे में फैल चुका था परन्तु उस सुराख से बाहर भी निकलता जा रहा था जो शायद इसी प्रयोग के लिए बनाया गया था।

बारिश की तेज़ी के साथ-साथ ठण्ड भी कठोर होती जा रही

थी। एक कंपकंपाहट-सी कमरे में फैली हुई थी। कमरे में पानी के गिरने की आवाज़ भय पैदा कर रही थी। उन दोनों को आपस में बात करते हुए डर महसूस हो रहा था। बात करना चाहते हुए भी वे दांतों को सख्ती से दबाए बैठे थे। दोनों अपने आपको अपराधी और दूसरे को निर्दोष साबित करने के प्रयत्न में थे।

प्यारी की छाती में फिर दर्द शुरू हो गया। हल्की-हल्की खांसी भी शुरू हो गई।

"तुम लेटो, मैं छाती की मालिश करता हूं......" उसकी आवाज़ कहीं गहरे में से निकलती मालूम हुई। अपरिचित-सी लगी उसको अपनी ही आवाज़।

प्यारी उसी चारपाई पर बच्चों के दूसरी तरफ़ लेट गई। परन्तु फिर उठना पड़ा। भीतर से खूनी कफ़ बाहर आ रहा था।

डॉक्टर ने बताया है कि फेफड़ों में ज़ख्म हो गए हैं।

वह उसकी छाती मलने लगा। खांसी आहिस्ता-आहिस्ता कम होती जा रही थी। नींद प्रभाव जमाने लगी थी।

शेरी ने आहिस्ता से करवट बदली। वह जानता था कि वह ज़रा-सा भी उल्टा-सीधा हिला तो बच्चों को चोट लग जाएगी या प्यारी को कष्ट पहुंचेगा।

वह तो चारपाई के डण्डे पर ही टिका हुआ था और घिसे-पिटे लिहाफ़ का एक कोना ही उस तक पहुंच रहा था।

एक ही चारपाई पर चारों का सोना कितना कठिन है।

उसका दायां हाथ प्यारी के पेट पर जा पड़ा। कितना झुक गया है अन्दर की ओर......जैसे अन्दर से सब कुछ निकाल दिया गया हो।

भरे-भरे शरीर का एक ग्रस्पष्ट चित्र बनने लगा।

उसका मन पीछे को लौट गया। वह वर्तमान को ग्रतीत में महसूसने लगा। उसका हाथ पेट से घूमता हुग्रा ऊपर को उठने लगा परन्तु नहीं......कितना मरा हुग्रा शरीर है। ग्रब तो कुछ भी नहीं रहा। ऐसा लग रहा है कि हड्डियों पर चमड़ी कस कर चढ़ा दी हो। कोई गर्मी नहीं......कोई हरारत नहीं......नीचे नुकीली हड्डियां ग्रौर ऊपर नक़ली खुरदरा मांस......उसकी सांसों में छटपटाहट-सी उभर ग्राई। छटपटाहट का एक गोला ग्रन्दर ही ग्रन्दर फूट रहा था।

उसका ध्यान फिर पानी के गिरने की ग्रावाज़ पर टिक गया। उसे लगा, पानी की धार उसके हृदय को काटती हुई गिर रही है। उसके हृदय में एक नहीं ग्रनेक छेद हो गए हैं। उन छेदों से ग्रलग-ग्रलग क़िस्म का मवाद बह रहा है।

यकायक बिजली कड़क उठी। एक थरथराती रोशनी की लहर चारों ग्रोर बह गई। उसके साथ ही धड़ाम की ग्रावाज़... भुरभुरा कर सारी की सारी छत फर्श पर ग्रा धमकी।

सुबह, बादल टुकड़ों में बंट कर ग्राकाश पर बिखर गए थे। ऐसा लग रहा था, ग्राकाश के टुकड़े हो गए हैं ग्रौर रात को ग्राकाश के ही एक टुकड़े ने पाताल में धंसना चाहा था।

रिक्शा खुली ड्योढ़ी में वैसे ही खड़ा था, जिसमें से पानी की बूंदें रिस रही थीं।

मलबे के नीचे कुनमुनाता हुग्रा शेरी हिल रहा था।



ज़िंदा गोश्त

हर रोज़ पांच-पांच, छः-छः बार यातना भरी सुरंग में ले जाकर अकथनीय पीड़ा देने वाले क्षण इस समय भी आकर लौट गए, फिर-फिर लौट आने के लिए। इन क्षणों को, वह चाहती है, एक कब्र खोद कर उसमें दफ़ना दे। एक बंदूक हो उसके पास और वह इन क्षणों को शूट कर दे। किसी अंधकार भरी कोठरी में क़ैद कर दे। कुछ भी कर दे......पर कुछ भी कर नहीं पाती।

उसके खड़े होते ही चंद्रिका ने पास पड़ी चादर झट से अपने वस्त्ररहित जिस्म पर बिछा ली। ऐसा करते हुए उसको अपने आप पर बहुत हंसी आती है। अपनी भोथरी-सी सोच पर...... वह नहीं चाहती कि कोई उसके जिस्म को मुफ़्त में देखे। अपनी नुकीली नज़रों के बर्छे उसके जिस्म में झोंके। आख़िर क्या हक़ है किसी को......? अपने रुपयों की पूरी-पूरी क़ीमत वसूल कर लेने के बाद किसी को क्या हक़ है उसके निर्वस्त्र जिस्म को देखते चले जाने का......।

चंद्रिका ने चेहरा दूसरी ओर मोड़ रखा था। ग्राहक के साथ वह कभी भी नज़र नहीं मिलाती। शुरू-शुरू में ऐसा हुआ था, और उन आंखों में उस समय उसने जो देखा था, उसे देख वह सहम-सहम गई थी। भीतर के खण्डहरात और-और टूटने लगे

थे। एक ऐसी झुरझुरी उसकी नसों में रेंग गई थी कि घिन-सी आने लगी थी उसे, जैसे किसी गंदे कीड़े के चमड़ी पर चलने से आती है।

इतनी गंदी, घृणित और लिजलिजी लगी थीं उसको वे नज़रें कि उसे पुरुष जात एक वाहियात क़िस्म की जात लगने लगी थी। एक खूंख़ार सभ्य पशु की जात। लगा था, यह जात उसे किसी दिन चबा जाएगी। उसे खा डालेगी। उसे अस्तित्वहीन कर देगी। काश ! भगवान् ने पुरुष जात न बनाई होती।

जैसे गिद्ध मुर्दा गोश्त को देख ललक उठता है। आंखों में भयावह चमक फैल जाती है। जीभ लपलपाने लगती है। क्या उसी तरह ही इस पुरुष जाति की आंखों में भी भयावह चमक नहीं फैल जाती, जब वह ज़िंदा गोश्त को सामने पाता है। क्या उसकी जीभ भी नहीं लपलपाने लगती ?

गिद्ध और मुर्दा गोश्त ! पुरुष और ज़िंदा गोश्त ! दोनों खेल एक से ही हैं। फ़र्क है तो सिर्फ़ इतना ही कि गिद्ध मुर्दा गोश्त को नोच-नोच कर उदर में डालता है और पुरुष ज़िंदा गोश्त को नोचता-खरोंचता है, चचोड़ता है।

और अगर पुरुष का वश चले तो वह ज़िंदा गोश्त को भी नोच-नोच कर खा जाए। पर वश नहीं चलता...न जाने उस को क्या हो जाता है उस एक क्षण में ? किसी पाशविक वृत्ति की छाया द्वारा जकड़ा लगता है वह। विवेकशून्य जंगली जानवर की भांति वह अपनी सम्पूर्ण ताक़त लगाकर ज़िंदा गोश्त का शिकार करता है। ज़िंदा गोश्त पर कैसी-कैसी बीतती है, यह सोचने का उसके पास न ही समय होता है और न ही दिमाग़......।

वह अपने भीतर की सूनी, गहरी, सिसकती हुई खाइयों से

बाहर निकल आई।

"चंद्रिका डार्लिंग, आज तो वास्तव में ही मज़ा आ गया। बड़े शानदार झटके लगे आज। इसी खुशी में लो दस रुपये का इनाम......।" उसने दस रुपये का नोट उसके मांस के लोथड़े से सीने पर रखा, नोट रखते हुए हाथ का भरपूर दबाव उसके सीने पर डाल दिया।

चंद्रिका चिहुंक उठी। मशीनी झटके की तरह चेहरा उस युवक की ओर मोड़ा। उसकी रगों में एक शोला-सा भभक उठा था। कोई गुबार था जो बहुत दिनों से उसके भीतर चक्करघिन्नी की तरह घूम कर उसे खंडित कर रहा था, और जिसे वह निकालना चाहती थी, उगलने लगी—

"ले जा दस रुपये और अपनी मां को भेज देना......।" लेटे लेटे ही उसने दस का नोट उठा कर उसके मुंह पर दे मारा। वह जानती थी कि यह लड़का पास के होस्टल से ही आया है। ऐसे लड़कों को वह खूब पहचानती है। उसके स्वर में आक्रोश भरा पड़ा था—"बड़ा आया है इनाम देने वाला...घर वाले पैसे भेजते हैं पढ़ाई करने के लिए और ये मज़े लेने और इनाम देने में ही बांट देते हैं। क्या यही सिखाती है तुम लोगों की पढ़ाई कि किसी मासूम और कमज़ोर लड़की के जिस्म को दस-दस रुपये में खरीदो। उसके साथ अत्याचार करो। उसको भीतर-बाहर से ज़ख्मी कर दो और फिर उपहास उड़ाने के लिए उसको इनाम देते फिरो। अगर यही सिखाती है तुम्हारी पढ़ाई, तो ऐसी पढ़ाई ख़त्म क्यों नहीं हो जाती......? क्यों ऐसी पढ़ाई पढ़ाने वाली पुस्तकें खुद-ब-खुद जल कर राख नहीं हो जातीं? क्यों नहीं हो जातीं? क्यों?"

बात वास्तव में बहुत कड़वी थी। उस युवक का अंतःस्थल कसैला हो गया। दस रुपये लेकर अपना शरीर बेचने वाली लड़की ने उससे यह क्या कह दिया...? पर जो कहा, है तो सत्य ही...।

'क्यों आते हैं हम यहां पर...? हम इतनी दूर-दूर से पढ़ने के लिए आए हैं यहां पर। पढ़-लिख कर इनसान बनने के लिए। अपना पेट काट-काट कर मां-बाप पैसे भेजते होंगे और हम उन्हीं पैसों से......क्या करते हैं......? शराबों में उड़ा देते हैं। औरतों के नंगे जिस्मों पर फेंक आते हैं।'

उसका अन्तर्मन हिल गया था। कुछ क्षण पहले का उसका रूप उसके भीतर ही कहीं दुबक कर निष्प्राण हो गया था। अंतिम सांसें गिनता हुआ तड़प रहा था। ग्लानि का एक स्रोत-सा फूट आया था और ग्लानि उसकी नसों में प्रवाहित होने लगी थी।

उसने दस रुपये का नोट उठा लिया। चंद्रिका की ओर देख पाने की हिम्मत भी नहीं रह गई थी उससे। वह तीर की भांति बाहर निकल गया।

चंद्रिका भीतर से जलती-भुनती अभी भी मुंह ही मंह में बड़बड़ा रही थी।

"बेटी, उठो। ज़रा साफ़ होकर कपड़े पहन लो......।"

"नहीं, मुझे ऐसे ही पड़ा रहने दो। और अब मेरे पास कोई भी न आए......।" उसका स्वर अभी भी तपा हुआ था।

"बेटी, बाहर कोई बड़ा आदमी आया हुआ है। मालदार लगता है।"

उसके भीतर पहले से ही कुछ रिस रहा था। एक तूफान उसके भीतर तोड़-फोड़ करता हुआ मचल रहा था। पुराना टूट-

टूट कर ढह रहा था...बिखर रहा था।

वह पूरी ताक़त लगा कर फट पड़ी—"भाड़ में जाओ तुम दोनों और वह बड़ा आदमी...मैं किसी का भी मुंह नहीं देखना चाहती। किसी की मनहूस शक्ल नहीं देखना चाहती। तुम दोनों मेरे मां-बाप नहीं मेरे शत्रु हो। क्या बिगाड़ा है मैंने तुम लोगों का? किस जन्म का बदला लिया जा रहा है मुझसे? अपनी बेटी से पेशा करवाने से पहले ही तुम दोनों मर क्यों नहीं गए...? ज़लालत भरी ज़िंदगी जीने से पहले ही तुम दोनों ने भगवान् से मौत क्यों नहीं मांगी? क्या इसीलिए जन्मते हैं लोग बेटियों को......!"

मां घबड़ा-सी गई। चंद्रिका का दहकता हुआ रूप देखकर वह एकबारगी भीतर से कांप-कांप गई।

"अरे चंदा, क्या हुआ तुझे......? आहिस्ता बोलो। तुम्हारे बाबा के साथ वह बाहर बैठा हुआ है।"

"क्यों बोलूं आहिस्ता? क्या जुर्म किया है मैंने जो आहिस्ता बोलूं? आख़िर क्यों......? मैं शोर मचाऊंगी। ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाऊंगी। मेरी ज़बान अब बंद नहीं रह सकती। अब मेरी आवाज़ भीतर ही भीतर नहीं घुट सकती। मैं भी इनसान हूं। हाड़-मांस की बनी हुई इनसान...मशीन नहीं हूं। रोज़ के पांच-पांच, सात-सात दरिंदे आकर मांस नोचते हैं, हड्डियों को चचोड़ते हैं। और यह देखो .." उसने अपने शरीर से चादर उठाकर दूर फेंक दी। निर्वसन शरीर मां के सामने फैलाती हुई चिल्लाई—"देखो यह, दुनिया भर की गंदी और लाइलाज बिमारियां लग गई हैं मुझे, और यही हालत रही तो एक दिन देखना, मेरा यह शरीर कोढ़ी से भी बदतर हो जाएगा। थूकने की इच्छा नहीं होगी

किसी की…सिसक-सिसक कर जिऊंगी। मौत चाहूंगी पर मौत भी नहीं आएगी। और ऐसा होगा तुम दोनों के कारण ही……तुम दोनों ही मेरे इस शरीर के दुश्मन हो।"

चंद्रिका को लगा कि वह एक नई दिशा की तरफ़ चल पड़ी है।

मां ने ज़मीन पर से चादर उठा कर उसके शरीर पर डाल दी।

"बेटी।" मां ने उसके सिरहाने बैठ उसके तनाव से खिंचे चेहरे को दोनों हाथों में लपेट लिया।

चंद्रिका ने उसके दोनों हाथों को झटक दिया—"मुझे हाथ मत लगाओ और न ही मुझे बेटी कहो। बेटी कहते हुए तुम्हारी आत्मा कांपती क्यों नहीं? तुम्हें धिक्कारती क्यों नहीं? तुम्हारी जीभ कट क्यों नहीं जाती? दस-दस रुपये में बेटी का जिस्म बेचने वाली मां हो तुम……नहीं-नहीं, तुम मां नहीं ……तुम मेरी मां नहीं। तुम्हारे अंदर मां नाम की कोई चीज़ नहीं…।" चंद्रिका सिसकने लगी।

मां भीगे स्वर में कहने लगी—"चंदा बेटी, ऐसा मत कहो। मैं तुम्हारी मां हूं, मां……ये सब न करते तो भूख की वजह से तीनों कब के मर चुके होते। कमाने वाला था, वह जेल में चला गया। भूख आदमी से क्या-क्या नहीं करवाती……? और फिर यह सोचा था कि थोड़े-बहुत रुपये-पैसे इकट्ठे कर लूं तो तुम्हारी शादी कर दूंगी। देने के लिए भी तो पास कुछ चाहिए। ये सब तुम्हारी खुशी के लिए ही तो किया है। आठ हज़ार जमा हो चुके हैं। दस हज़ार करके……।"

"हां-हां, मैं सब जानती हूं। मुझे सब पता है।" वह गला

फाड़ कर दहाड़ने लगी—"न तो मेरी शादी होनी है और न ही दहेज के लिए पैसा इकट्ठा हो रहा है। उस बुड्ढे खूसट को रोज़ अंग्रेज़ी शराब और कबाब चाहिएं। मेरी शादी करवा के वह यह चीज़ें कहां से पाएगा तब...? सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को कैसे छोड़ेगा वह? तुम दोनों को तो भगवान् नरक में भी जगह नहीं देगा। मेरा जिस्म बेच-बेच कर मेरे लिए ही पैसे इकट्ठे कर रहे हैं......।"

"अच्छा बेटी, तू यही चाहती है तो उसे वापस भेज देती हूं और आज से कोई भी नहीं आएगा। तुम्हारे बाबा को कह कर कहीं पर तुम्हारी शादी की बात चलवाती हूं।"

"चाहे जो करो, पर मैं शादी नहीं करूं गी। मुझे नफ़रत है। पूरी पुरुष जात से नफ़रत है। सब से नफ़रत है। तुम से, बाबा से और अपने आप से भी..." उसकी आंखों में आंसू उतर आए।

तभी चंद्रिका का बाबा कमरे में घुसा—"मैं करवाता हूं तुझे नफ़रत...... हरामज़ादी! सेठ पूरे सौ रुपये देने वाला था और बख्शीश अलग से। इतनी मुश्किल से फांस कर लाया था उसको लेकिन कुतिया की ज़बान ने उसको भगा दिया।"

उसने दो-तीन थप्पड़ चंद्रिका के मुंह पर दे मारे।

चंद्रिका भी अब कुछ न कुछ करने पर उतारू हो गई थी। उसने बाबा की बांह पकड़ उसे ज़ोर से धक्का दिया। वह पिये हुए था। लहराता हुआ ज़मीन पर गिरा।

उसका घायल अन्तर्मन फुंफकारता हुआ कह रहा था कि उचक कर बाबा की गर्दन दबोच ले। पर वह घायल शेरनी की तरह उसे घूरती ही रही।

बाबा ज़ोर-ज़ोर से चंद्रिका को गालियां बकने लगा। उसको

भला-बुरा कहने लगा।

मां ने आगे बढ़ कर बाबा को उठाया और बिना कुछ बोले उसे बाहर ले गई। वह अभी भी गंदी-गंदी गालियां कै की भांति बाहर को उगल रहा था।

चंद्रिका फिर बिस्तर पर गिर पड़ी। दोनों हाथों में मुंह को छुपा कर फूट-फूट रोने लगी। भीतर का सब कुछ पिघल गया था।

रोते-रोते उसे अपने भाई राम की याद आ गई जो जेल में था। उम्र क़ैद की सज़ा भोग रहा था। उसके कारण ही...।

उन दिनों वह आठवीं में पढ़ रही थी। एक सुनहरे भविष्य की कल्पना करती थी वह। समय की गाड़ी उसके परिवार को ठीक गति से, ठीक राह पर लिए जा रही थी। हां! बाबा की पीने की आदत से सारे परेशान थे। हाथ पर हाथ धरे निठल्ले बैठे रहना और पीने के लिए माल ज़रूर चाहिए, इसके लिए राम को सारा दिन परिश्रम करना पड़ता था। बैल की तरह जुटा रहता सारा दिन...और खाने के लिए दाल-रोटी ही मिल पाती।

वह अपनी उम्र से कुछ बड़ी लगती थी। जवानी पूरे वेग से उस पर चढ़ आई थी।

स्कूल आते-जाते एक लड़के को वह हमेशा अपने पीछे देखती। शक्ल-सूरत से खास नहीं था। पतला-सा......बिला-नागा वह अपनी ड्यूटी देता था। जिस दिन तो वह अकेली होती, उस दिन कोई गंदा फिकरा भी कस देता। चंद्रिका की ख़ामोशी उसे प्रोत्साहित करती। एक दिन तो उसने चिट्ठी दे दी थी जिसे उसने बिना पढ़े ही एक गंदे नाले में फैंक दिया था।

वह भीतर ही भीतर से परेशान कि करे तो क्या करे... ?

कैसे पीछा छुड़ाए इससे ? यदि बाज़ार में पकड़ कर झाड़ दे तो अपनी भी तो बेइज़्ज़ती होगी। इसी शर्म के कारण वह कुछ कर नहीं पाती थी। सब देखती, सहती थी।

उस दिन भी वह स्कूल से लौट रही थी। वह लड़का पीछे-पीछे यंत्रवत् चला आ रहा था। पन्द्रह-बीस फुट का फ़ासला रख कर......।

उसके साथ उसकी सहेली थी। वह अक्सर उसके साथ ही आती-जाती थी पर चंद्रिका ने शर्म के कारण उसको भी कुछ नहीं बताया था।

तभी उसने देखा, राम साइकिल पर अख़बारें रखे चला आ रहा है।

न जाने चंद्रिका के दिमाग़ में क्या आया कि जब राम उसके क़रीब से गुज़रने लगा तो उसने हाथ का इशारा करके राम को रोक लिया।

राम से छोटी थी वह। उसकी इकलौती बहन। जी जान से चाहता था राम उसे।

वह साइकिल से उतर कर खड़ा हो गया—"क्या बात है चंदा ? कुछ चाहिए क्या......?"

"भइया, यह लड़का रोज़-रोज़ मेरे पीछे आता है और तंग भी करता है।" उसे लग रहा था कि लड़का जिस भी भावना से उसके पीछे आता होगा, उसकी शिकायत करके आज वह उसकी भावना को कुचल रही है, उसे मिटा रही है। यह अच्छा नहीं कर रही वह।

वह लड़का अपनी ओर इशारा पाकर समझ गया कि उसकी शिकायत हो रही है और शीघ्र ही शामत आने वाली है। वह

लम्बे-लम्बे क़दम रखता चलने लगा।

राम की ग्रांखों में खून उतर ग्राया। होंठ कांपने से लगे। चेहरे की कमान खिंच गई।

साइकिल को वहीं फैंक कर वह उस लड़के की ग्रोर भागा। राम को भाग कर ग्रपनी तरफ़ ग्राते देख वह भी भागने लगा। ग्रापद्स्थिति में ग्रपने से भारी शत्रु से ग्रपना बचाव करने के लिए भागना ही उचित होता है।

परन्तु राम ने उसे ज़्यादा दूर तक भागने न दिया। जल्दी ही उसको धर दबोचा। ग्रौर फिर नीचे पटक कर उसकी छाती पर बैठ गया। तड़ातड़ उसके चेहरे पर घूंसे बरसाने लगा—"ग्रावारा कुत्ते, मेरी बहन को छेड़ता है। तेरे घर में बहन नहीं है क्या ?"

उसके मुंह, नाक से खून बहने लगा।

"न……न……न…नहीं ! मैंने नहीं छेड़ा। मैं बहुत श… शरीफ़ हूं। म…मुझे माफ़ कर दो। वह मेरी बहन है…।" उस के मुंह से शब्द रोनी ग्रावाज़ में निकल रहे थे।

राम ने गुस्से की ग्राग में उसकी गर्दन को दोनों हाथों से जकड़ लिया ग्रौर पूरी शक्ति लगा कर दबाने लगा। लगता था, राम पागल हो चुका है।

उस लड़के का सारा शरीर जाल में फंसे पक्षी की तरह फड़-फड़ाने लगा। निरीह पक्षी की तरह हाथ-पांव पटक रहा था वह……ग्रांखें बाहर को उबली ग्रा रही थीं। जीभ बाहर निकल ग्राई थी। शरीर का सारा रक्त चेहरे पर इकट्ठा हो गया था।

चारों तरफ़ एक भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी।

"ग्ररे, ग्ररे, पकड़ो इस लड़के को। उस कमज़ोर को मार ही डालेगा यह तो……।"

"बेचारे की जीभ और आंखें बाहर को निकल आई हैं।"

"क्यों भई, क्यों मार रहे हो इसको ?"

"डालडे घी का ज़माना है। छोकरों की बांहों में ज़्यादा ज़ोर आ गया है।"

दो-तीन युवकों ने उसको पकड़ कर उठाना चाहा पर वह तब भी नहीं उठ रहा था। बदस्तूर उसकी गर्दन को दबाए जा रहा था, इस बात से अनजान होकर कि मर गया तो उसको फांसी भी हो सकती है।

"मारो इस ससाले को। उस बेचारे का टेंटुवा ही दबा दिया है इसने……।"

एक ने गर्दन के इर्द-गिर्द जकड़े उसके हाथ खोले और उसको लड़के की छाती से उठाकर खड़ा कर दिया।

राम उनकी बांहों से निकल कर उसको दबोचने के लिए अब भी छटपटा रहा था। नासाछिद्र फूल-पिचक रहे थे। जबड़ों की हड्डियां स्पष्ट दिखाई दे रही थीं।

सभी ने देखा कि उस लड़के का तड़फड़ाता शरीर आहिस्ता-आहिस्ता ऐंठ रहा है। और कुछ क्षणों के बाद वहां मिट्टी का शरीर ही पड़ा था। चलता-फिरता, हंसता-बोलता, सोचता, महसूसता शरीर अब निर्जीव होकर वहां पड़ा था।

राम भौंचक्का हो ताकता रह गया। गुस्से की गर्मी कहीं जज़्ब हो गई। उसे लगा, वह हिमखण्ड बनता जा रहा है।

सारी भीड़ राम के ख़िलाफ़ हो गई। आख़िर होती भी क्यों न ? उन्होंने अपनी आंखों से उसे क़त्ल करते देखा था। भीड़ की नज़रों में वह एक क़ातिल था, ख़ूनी था, अपराधी था। और भीड़ कभी भी किसी ख़ूनी को माफ़ नहीं करती। भीड़ में से किसी

ने उस पर अपनी लात जमाई और सारी भीड़ उस पर टूट पड़ी।

जिसको जिस प्रकार का दाव लगा, उसने वैसे ही जमा दिया। भीड़ निरन्तर बढ़ती ही जा रही थी।

चंद्रिका राम का साइकिल लेकर तब तक भीड़ के पास पहुंच गई थी उसे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। भीड़ 'मारो-मारो' का शोर करती हुई किसी को पीट रही थी। उसने समझा कि उसी लड़के की पिटाई हो रही है। यह बहुत ज़्यादती की उसने लड़के के साथ। अच्छा नहीं किया। सिर्फ़ पीछे ही तो आता था उसके...फिर किसी दिन मिला तो उससे माफ़ी ज़रूर मांगेगी। बेचारे को अब न जाने कितनी देर अस्पताल रहना पड़ेगा। उस के भीतर सहानुभूति बहने लगी।

तभी दो-तीन गश्ती पुलिस के सिपाही उधर आ निकले। सिपाहियों को देख भीड़ भिनभिनाने लगी। उन्होंने समझ लिया कि कोई उनके काम का ही मामला है।...अपने अधिकारों का खूब प्रयोग किया उन्होंने। डंडों के ज़ोर से भीड़ छंटा दी। पर भीड़ जाने वाली थी कहां ? पच्चीस-तीस फुट का दायरा बना कर खड़ी हो गई।

JAMMU

लड़के का शव और पिटी हुई हालत में राम कराहता हुआ वहां पड़ा था।

चंद्रिका ने राम की लहूलुहान हालत देखी तो चीख़ मार कर उस पर गिर पड़ी—"भइया ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ! यह क्या हो गया तुम्हें ? क्या हो गया मेरे भाई को। इन ज़ालिमों ने पीट डाला मेरे भाई को। मेरे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ.........." वह फूट-फूट रोने लगी।

भीड़ में से किसी ने हवलदार को बता दिया था कि इसने

उस लड़के का खून कर दिया है । इसीलिए भीड़ बिगड़े सांड की तरह बिफर पड़ी थी ।

हवालदार ने एक सिपाही को तुरन्त निकट के थाने भेज दिया ।

"ए छोकरी, उठो इधर से......तुम्हारे भाई ने इस लड़के का खून कर दिया है। अभी हमारी गाड़ी आ रही है। इसको हवालात ले जाना है ।" हवालदार के बोलने से उसकी बड़ी-बड़ी नुकीली मूंछें उचक रही थीं। आवाज़ में एक घरघराहट-सी थी ।

"नहीं-नही, मेरे भाई ने खू...खून नहीं किया। इसने नहीं मारा। यह तो राम है। राम खून नहीं कर सकता ।" खून शब्द सुन कर ही उसके होश गुम हो गए ।

लहूलुहान राम कराह रहा था ।

"ये सारी भीड़ क्या झूट बोलती है ? सबने अपनी आंखों से देखा है। तुम्हारे भाई ने इस लड़के का गला दबा कर मार डाला है।" हवालदार की नज़रें भी नशीली हो गई थीं ।

"नहीं-नहीं, मेरा भाई ऐसा नहीं कर सकता। वह खून नहीं कर सकता। देखो तो, सारी भीड़ ने इसे मार-मार कर अधमरा कर डाला है। जगह-जगह से खून निकाल दिया है । तुम्हारे पांव पड़ती हूं, मेरे भाई को छोड़ दो ..... ।" उसने फिर रोना शुरू कर दिया ।

चौदह साल की उस मासूम युवती की बात सुनता कौन ? भीड़ भी यह करुणाजनक दृश्य देख रही थी, पर अब आगे आने का साहस किसी में नहीं था। जिस-जिस ने भी मौक़े का फायदा उठा कर दाव लगाया था, वे सब खिसक गए थे । कहीं वे भी पकड़े न जाएं। और, और लोग भीड़ में शामिल होते जा रहे

थे ।

"हम कुछ नहीं कर सकते । फैसला तो अदालत में ही होगा । तुम उठो यहां से......।" हवालदार ने उसे बांह से पकड़ कर उठाते हुए एक क्षण के लिए अपने साथ सटाया और फिर परे हटा दिया ।

वह सिसकती हुई राम को देखे जा रही थी । राम उठकर बैठ गया था और युवक के शव को खाली-खाली आंखों से एक-टक देख रहा था ।

कुछ देर बाद पुलिस की दो गाड़ियां तथा एक अस्पताल की सफ़ेद गाड़ी आ गई । दो-तीन बड़े-बड़े अफ़सर, डॉक्टर तथा कितने ही सिपाही गाड़ियों से उतरे ।

आधे घण्टे तक वे लोग अपना काम करते रहे । शव के चित्र भी खींचे गए ।

चंद्रिका कभी पुलिस अफ़सरों के आगे फ़रियाद करती, कभी डॉक्टर के आगे कि उसके भाई ने खून नहीं किया है । पर उसकी एक न सुनी गई ।

कार्यवाही कर लेने के बाद लाश को अस्पताल भेज दिया पोस्टमार्टम के लिए और राम को उठा कर पुलिस की गाड़ी में पटक दिया । उसके घावों से खून अभी तक रिस रहा था ।

चंद्रिका रोती-बिलखती राम की साइकिल घसीटती हुई घर लौट आई थी ।

पूरे डेढ़ साल तक मुकद्दमा चलता रहा था । राम की ओर से कोई वकील नहीं किया गया था । करते कहां से ? वकील को देने के लिए रुपयों का ढेर चाहिए था और रुपए थे ही नहीं । बाबा अपनी लत पूरी न होने के कारण चंद्रिका को सारा दिन

कोसते रहते, गालियां निकालते रहते।

भूखों मरने की नौबत ग्रा गई थी। चंद्रिका की पढ़ाई तो उसी दिन से छूट गई थी।

बाबा ग्रख़बार बेचने को निकलने लगे। जितने पैसे बचते, उसकी पीकर घर लौट ग्राते। दोनों मां-बेटी भूखी ही सो रहतीं। बाबा कभी-कभार थोड़े-बहुत पैसे दे देता तो उनके पेट को चैन मिलता।

ग्रौर फिर राम को उम्रक़ैद की सज़ा हो गई। उसने ख़ून किया था, उसका जुर्म साबित हो चुका था।

उसी दिन बाबा एक ग्रादमी को लाया था ग्रपने साथ। पहली बार। उसे ग्रन्दर भेज कर बाहर से बाबा ने कमरा बंद कर दिया था। मां भी बाबा के साथ मिली हुई थी। बाद में पता चला था कि उस ग्रादमी ने बाबा को व्हिस्की पिलाई थी ग्रौर साठ रुपये नक़द दिए थे।

उसके बाद सैंकड़ों ग्राए......।

राम ने खून किया था ग्रपनी बहन की इज़्ज़त की रक्षा के लिए, ग्रौर उसकी वही बहन ग्राज दस-दस रुपये में शरीर बेचती है, सभ्य दरिंदों से ग्रपने मांस को नुचवाती है, सिर्फ़ दस रुपयों के लिए...... ।

ग्राज उसका भाई होता तो क्या उसकी यह हालत होती? क्या वह ग्रपनी बहन की ऐसी ग्रवस्था देख पाता?

ग्रौर ग्रगर उसको जेल में पता चल जाए कि जिस बहन के लिए उसने क़त्ल करके उम्रक़ैद की सज़ा पा ली है, उसकी वही बहन ग्राज एक वेश्या की-सी ज़िंदगी बसर कर रही है तो क्या ऐसा सुन कर वह एक पल भी जीवित रह पाएगा......? कभी

नहीं ! वह दीवारों से सर टकरा-टकरा कर मर जाएगा।

राम की याद में चंद्रिका की आंखें गंगा-यमुना की तरह बह रही थीं।

वह उठ कर बैठ गई। कमरे में अंधेरा अपना राज्य स्थापित किए हुए था। चारों तरफ़ छाई ख़ामोशी के भीतर सांय-सांय का शब्द वातावरण को डरावना बना रहा था।

वह सोई ही नहीं थी। आज उसने हमेशा-हमेशा के लिए सो जाने का निश्चय किया हुआ था। एक ऐसी नींद का निश्चय, जो कभी न खुलने वाली थी।

कुछ क्षण वह प्रस्तर-सी बनी बैठी रही। न जाने क्या सोचती हुई ? और फिर वह एक झटके के साथ उठ खड़ी हुई। आंखों में एक विचित्र-सी चमक फैली हुई थी। होंठ भिंचे हुए थे।

वह कमरे से बाहर निकली। कमरे के साथ ही सटी रसोई में मां और बाबा दोनों सोते थे। बाबा तो शराब पी कर बेहोशी की हालत में पड़ा होगा और मां नींद में आदतानुसार बड़बड़ा रही होगी।

उसके रास्ते में कोई रुकावट नहीं थी।

बाहर चारों तरफ ठण्ड पूरे ज़ोरों से फैली हुई थी। हड्डियों के भीतर तक घुस कर कंपाने वाली ठण्ड। लग रहा था, आकाश ने भी ठण्ड से बचने के लिए ही तारों जड़ा कम्बल ओढ़ रखा है।

इस समय सब लोग अपने-अपने मकानों में रज़ाइयों में दुबके पड़े थे। रज़ाइयों की तपश का आनन्द ले रहे थे।

और चंद्रिका इन सब बातों से बेख़बर बढ़ी जा रही थी। शहर के दक्षिण की ओर......।

लम्बे-लम्बे क़दम भरती हुई वह जा रही थी अपने आपको मिटा देने के लिए, दस-दस रुपये में बिकने वाले अपने शरीर को चीथड़े-चीथड़े कर देने के लिए, भयानक रोगों से ग्रस्त अपने शरीर से मुक्त होने के लिए।

अब मां और बाबा को उसकी शादी की, उसके दहेज की तथाकथित चिंता नहीं रहेगी। उनके पास आठ हज़ार तो हैं ही .....उसके शरीर की कमाई खाते रहे दोनों। शराब पिएं, कबाब खाएं, चाहे जो करें......।

लगभग पच्चीस मिनट चलने के बाद वह रेल्वे लाइन के पास पहुंच गई और दोनों लाइनों के मध्य उस तरफ़ चलने लगी, जिधर से जनता मेल ने आना था।

उधर से जनता मेल आएगी और इधर से चंद्रिका का हांड-मांस का शरीर चला जा रहा था। दोनों की टक्कर से न धरती कांपेगी, न आकाश फटेगा और न ही गाड़ी उल्टेगी। गाड़ी अपनी मंज़िल की ओर बढ़ती चली जाएगी। चंद्रिका का रक्त पीकर... और उसके जिस्म का ज़िंदा गोश्त मुर्दा गोश्त में बदल जाएगा।

कल मुर्दा गोश्त के इर्द-गिर्द चारों तरफ़ गिद्ध मंडराएंगे। आंखों में भयावह चमक लिए......जीभें लपलपाते हुए...और मुर्दा गोश्त को अपने उदर में डालेंगे। यह अच्छा है; रोज़-रोज़ की मौत से तो छुटकारा मिल जाएगा।

चंद्रिका को दूर, बहुत दूर एक रोशनी अपने निकट आती दिखाई दी। जो पल-पल उसके निकट आती जा रही थी। उस रोशनी को आलिंगन में लेने के लिए उसने उस तरफ़ दौड़ना शुरू कर दिया।

●●●

ज़ुड़ती हुई टूटन

ज़िंदगी का एक लम्बा हिस्सा इसी तरह दहकते हुए व्यतीत हो चुका है। गिरते-पड़ते गृहस्थी की गाड़ी यहां तक आ पहुंची है। बिना किसी प्रयास के यहां तक पहुंची गाड़ी एकदम खरखरी हो चुकी है। जगह-जगह चित्रित टूटन के निशान उसे एक हद तक विकृत कर चुके हैं।

पहली बार के टूटने का अहसास आज भी कभी-कभी नसों को चीर देता है। कितना लावारिस हो जाता हूं मैं। भीतर कहीं गहरे में उसी क्षण की भांति मौत ही मौत फड़फड़ाने लगती है। कितना चाहा है कि उस क्षण की स्मृति कहीं दब जाए। काले-काले ज़हरीले बादल मानसपटल पर न छाएं परन्तु चाहा हुआ तो कभी हुआ ही नहीं। हूं! रोज़-रोज़ की मौत भला चाहता ही कौन है? अप्रिय, अस्वाभाविक बातें तो स्वयं ही ज़िंदगी के रास्ते में बिछ जाती हैं। जिन पर आदमी का कोई वश नहीं चलता। चलना ही पड़ता है।

शादी के इन तेईस वर्षों में कितनी ही बार टूटा हूं और टूटने के बाद जुड़ना भी स्वाभाविक हो गया है। परन्तु जुड़ने की स्थिति तक पहुंचते-पहुंचते एक और टूटन कहीं से तोड़ देती है और सम्बन्धों का बिखराव एक बार फिर जुड़ने के लिए शुरू हो जाता

है।

शादी के समय मैंने कभी नहीं सोचा था कि जीवन के चक्र की गति इस तरह निष्क्रय हो जाएगी। ऐसा सोचता भी कौन है? हज़ार-हज़ार सुखद कल्पनाएं की थीं। प्रेम, विश्वास, श्रद्धा......इन तीनों को आधार बना कर मैंने कितने ही आदर्श रेखाचित्र बनाए थे। कितने विश्वास के साथ सोचा करता था कि मैं संसार का सबसे सुखद गृहस्थ बनूंगा। हमारे दाम्पत्य जीवन का नन्हा-सा इतिहास एक सफल इतिहास होगा।

रेखाचित्र को मिटते देर नहीं लगी। घृणा, अविश्वास पर आधारित हमारा इतिहास काला इतिहास बन गया। एक छोटी-सी घटना ने सब कुछ अनचाहा कर दिया था। धटना को विस्मृत करना चाहा था परन्तु वह अनचाहा इतना गहरा घाव दे गया था कि तेईस वर्ष बीत जाने के बाद भी आंखों की पुतलियां ज़हरीली होने लगती हैं।

दाम्पत्य जीवन की तार कितनी ही बार टूट कर जुड़ी है। हर जुड़न में एक गांठ पड़ती है। हर गांठ के बाद कसाव बढ़ जाता है। ज्यों-ज्यों कसाव बढ़ता जाता है, तार भी उतनी शीघ्रता से टूटती है और कभी यह तार ऐसी टूटेगी कि बस......।

लगभग तीन वर्ष हो गए। उन दिनों मैं अचानक ही बीमार हो गया था। दो माह तक बीमारी की हालत में कराहटें बिखेरता रहा था। पेट में दर्द होता था और दर्द कभी-कभी इतनी सीमा पार कर जाता कि लगता था जैसे पेट ही फट जाएगा। बेहोशी के दौरे भी पड़ते थे।

ऐसे में एक-दो बार शादी से पहले का बनाया रेखाचित्र स्मरण हो आया था। उसी रेखाचित्र के एक कोने में अस्वस्थ-सा

लेटा मैं और मेरे पास बैठी नलिनी इस तन्मयता और स्नेह भाव से मेरी सुश्रुषा करती कि मैं अंदर तक भीग जाता। सब कुछ स्वाभाविक और सहज लगने लगता था। कहीं कुछ भी टूटा, बिखरा और खोया हुआ नहीं लगता था। उन क्षणों में मैं फिर से संसार का सुखद गृहस्थ बन जाता था। परन्तु ज्यों ही यथार्थ की कड़ुवाहट आंखों में घुसती, चारों तरफ़ अग्नि ही अग्नि दिखाई देती थी। वैसा कुछ भी नहीं होता था। एक शुष्क कठोरता घेर लेती। हड्डियां भीतर तक छिलती चली जातीं। कराहटों के कारण भिची मुट्ठियों का अर्थ कुछ और भी होता था। परन्तु पंगु बना रहता। कुछ भी कर सकने में असमर्थ हो गया था।

'स्साली बीवी बनी है मेरी। मैं यहां पर मर रहा हूं और इस हरामज़ादी को चिंता ही नहीं......।'

यह शब्द बड़बड़ाहट के रूप में निकलते और पास बैठी बड़ी भाभी बड़बड़ाने का कारण पूछती तो कुछ भी कह नहीं पाता था। हां! आंखों के कोनों में फंसे आंसू उसे सब कुछ समझा देते थे। वह भी एक आह भर कर रह जाती।

कभी-कभी नलिनी कोई चीज़ देने आती तो कुछ मिनटों के लिए वहीं खड़ी रह जाती थी। घृणा और दया......इन दोनों भावों से उसे देखता था। यह पता नहीं होता था कि कब कौन-सा भाव उभर आना है। जब कभी भीतर तक घृणा का ज़हर फैल जाता तो दिल चाहता कि अभी उचक कर पकड़ लूं और चीथड़े-चीथड़े कर दूं इस कुतिया के। इसने मेरी ज़िंदगी की नस-नस में ज़हर भर दिया है। क्षत-विक्षत हो गया हूं मैं। इसको ज़िंदगी भर सुख का मुख नहीं देखने दूंगा। दया की पात्रता के समय मैं पिघल कर उसकी आंखों में जा बसता था। मेरी यह

अवस्था शायद बीमारी के कारण हो गई थी।

जब अस्तित्वहीन व्यक्ति दूसरे के अस्तितत्व का बोध करने लगता है तो फिर उसके प्रति वह कितना भी कठोर क्यों न हो, पिघलना सहज हो जाता है।

उसकी आंखों में खोई अपनी दुनिया ढूंढता था। सोचता था, इसका दोष ही क्या है ? पिछले सत्रह वर्षों से मैंने इसे दिया ही क्या है ? प्रताड़ना......दुःख......आंसू......सिसकियां और घुल-घुल कर जीना......! शादी के बाद सिर्फ़ दो-तीन वर्ष ही इसे पत्नी का अधिकार मिला। सुख-दुःख में एकाकार हो कर चले। इन तीन सालों में हुए दोनों लड़के भी मौत के मुंह में चले गए। घटना हो जाने के बाद मैंने कभी इसे श्रद्धा और स्नेह से नहीं देखा। कभी इसके कष्ट नहीं पूछे। कहीं भी इसे सहारा नहीं दिया। परन्तु यह सब विचार क्षणिक ही होते थे। कहीं भी टिक नहीं पाते थे। सावन के मेघों की भांति इनके उड़ने का पता ही नहीं चलता था।

और अंत में बात आ जाती थी भाग्य पर। सोचता था, जैसा भाग्य में लिखा हो, वैसा ही होता है।

बीमारी से उठने के एक वर्ष बाद तक मैं नलिनी से बोला नहीं था। न जाने कैसी बू आती थी उसके वदन से। उसका गेहुंआं रंग और काला लगने लगा था। घिन-सी आने लगती थी। छोटी-छोटी आंखें एकदम छोटी हो गई थीं। पुतलियां लिजलिजी हो गई थीं। देखते ही इच्छा होती कि इसके मुंह पर थूक दूं। इसकी नसों को कचोटता रहूं ताकि यह स्वयं ही अंदर ही अंदर बिखर कर मर जाए। बार-बार टूटने से एक ही बार टूट जाना अच्छा है। परन्तु कर कुछ भी नहीं पाता था। गालियां ही दे देता था

ग्रौर कभी बात बढ़ जाती तो थप्पड़ तक मार देता था।

लम्बे-चौड़े परिवार में तो बिना बोलचाल के काम चल जाता है परन्तु यदि ग्रकेले ही इसके साथ रहना पड़ता तो कैसे शादी के बाद का इतना समय निकल पाता। ऐसे में तो एक बार टूट कर जुड़ना मुश्किल हो जाता। एक न एक को ग्रात्महत्या करनी पड़ती या फिर हत्या भी। कुछ महीने पहले तो नलिनी की हत्या हो चुकी होती, परन्तु वह छिटक गई थी हाथों से। कितनी ग्रसहज बात हो गई थी। स्वयं ग्रचम्भित था कि ऐसा कैसे हो गया।

जनवरी का ठिठुरता हुग्रा महीना था। सर्दी काफ़ी गहरी थी। एकाएक नींद बिखर गई थी। घड़ी देखी तो दो बज रहे थे। लाल रंग के नाईट लैम्प की रोशनी कमरे को रक्तिम कर रही थी। ग्रचानक दृष्टि नलिनी की चारपाई पर जा गिरी। उसकी रजाई उसके सीने से खिसक ग्राई थी। तंग ब्लाऊज़ ग्रस्त-व्यस्त हो गया था। सुप्तावस्था में नलिनी का बिखरा हुग्रा शरीर मेरे रक्त संचार को तेज़ कर गया था। उसके चेहरे से नलिनी का मुखौटा हट गया था। ग्रब वह सिर्फ़ ग्रौरत थी, जिससे ग्रादमी प्यार करता है, जिसके सहवास से पुरुष की इन्द्रियों की तृप्ति होती है।

मेरी ग्रांखों में रंगीन सितारे नाचने लगे थे। रक्त के उत्तेजक प्रवाह से ग्रंग-ग्रंग रोमांचित हो उठा था। धड़कनों की गति न जाने क्या थी?

एक लम्बे ग्रन्तराल के बाद ऐसा क्षण ग्राया था। नलिनी से घृणा थी परन्तु ग्रौरत से नहीं। इस समय नलिनी एक ग्रौरत थी ग्रौर ग्रौरत की इस ग्रवस्था ने संयम भगा दिया था। ग्रगले ही

क्षण मैं नलिनी के पास था।

बहशीपन की हद तक मैंने उसके साथ व्यवहार किया था। एकदम जंगली जानवर की भांति .....जब बांध टूटता है तो धारा को उस समय उचित-अनुचित कुछ भी नहीं सूझता। उसकी देह जगह-जगह से नखक्षत हो गई थी।

वह शायद उत्फुल्ल थी कि एक मुद्दत के बाद पत्नी का अधिकार मिला है। शायद इन क्षणों के बाद ही सम्बन्धों में स्थायित्व आ जाए और जीवन प्रवाह सामान्य हो जाए। इसीलिए सब कुछ सह गई। कितनी सहन शक्ति है इस त्रिया चरित्र में।

और रक्त ठण्डा हो जाने के बाद जब मुझे होश आया तो वहां की औरत को नलिनी का चेहरा लिए हुए पाया। यह कैसे हो गया ? यह तो हरामज़ादी नलिनी है। ओह ! मेरे मस्तिष्क में एकदम ज़हर चढ़ गया था। वह मुझे एक गन्दा कीड़ा लगने लगी थी।

उंगलियों के पोरों में आक्रोश उभर आया था। हाथों ने उस की गर्दन को आलिंगन में लिया था परन्तु वह एक हल्की चीख़ के साथ चारपाई से नीचे जा गिरी थी। अपनी तुड़ी-मुड़ी साड़ी और ब्लाऊज़ को संभालती दूसरे कमरे में भाग गई थी और बड़े भाई के बच्चों के साथ जा लेटी थी। रात भर उसके सुबकने के स्वर मेरे कानों के पर्दों से टकराते रहे थे।

प्रातः मैंने उसके चेहरे पर नखक्षत और दंतक्षत के बहुत से निशान पाए थे। इसके कारण मैंने अपने आपको कहीं से भी कमज़ोर नहीं पाया। भीतर से मैं और भी सख़्त हो गया था। कितने ही दिनों तक मैंने उसे भीगते पाया था। लगा था, वह वास्तव में ही टूट-टूट कर बिखर रही है। उसके बाद वह चार

महीने तक मेरे कमरे में सोई भी नहीं थी। मैंने भी इसे सहज ही स्वीकार कर लिया था।

सम्बन्धों का यह कसैलापन कहीं से भी कम नहीं हो पाया था। अब की टूटन में एक सख़्त, पथरीला, शुष्क ठहराव आ गया था जो कहीं से भी सम्बन्धों को जोड़ने की स्थिति में नहीं था। लगता था, यह टूटन अन्तिम है। इसके बाद जुड़ना अब सम्भव नहीं।

परन्तु आज......आज जब से सुना है कि नलिनी मां बनने वाली है। पत्थर टूट-टूट कर बिखरते से लग रहे हैं। नर्माहट का कोई अंकुर फूटता-सा लग रहा है। हिमखण्ड न जाने कैसी आंच पाकर पिघलता-सा लग रहा है। कहीं यह जुड़ती हुई अन्तिम टूटन तो नहीं। मैं अभी कुछ नहीं कह सकता। परन्तु लगता है, ज़िंदगी दिशा बदल रही है।



तांडव नृत्य

सोमू के पैरों ने गति पकड़ ली। पक्की सड़क और गांव के बीच का रास्ता उसने पच्चीस मिनटों में नाप लिया था। खण्डहर-सा मन्दिर उसकी बाईं ओर प्रगट हो चुका था। मन्दिर से थोड़ी दूर हट कर ही गांव का बाज़ार शुरू हो जाता है। मन्दिर के सामने पहुंच कर वह एक क्षण के लिए रुका। मन ही मन उसने भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति को प्रणाम किया और फिर उसी गत्ति के साथ गांव के छोटे से बाज़ार में दाखिल हो गया।

उसे बस में गांव के ही तीन लोग मिले थे। लब्बू राम तथा उसकी चेचक के दागों वाली पत्नी, जिसे बचपन में वे सब 'चित्तरी आला केला' छेड़ते थे और वह मां-बहन की गालियां निकालती हुई, उनका स्यापा करती हुई मारने को दौड़ती थी। एक बार तो वह उसके हाथ पड़ गया था। गुस्से में उसने कितने ही दोहत्थड़ मारे थे उसे। वह बेचारा बड़ी मश्किल से जान छुड़ा कर भागा था।

बस में चढ़ते ही जब उसको वह दिखी तो उसकी इच्छा हुई थी कि चिल्ला कर उसे 'चित्तरी आला केला' कहे और भाग जाए। उसको देखते ही बचपने की गंध लहरा गई थी उसमें। उन छूट चके क्षणों को पकड़ने की इच्छा हो आई।

परन्तु उसने अपने आपको रोक लिया था। अब वह शहर में रहता है। वह शहरी है।

तीसरा कोई नवयुवक था, जिसे वह शक्ल से तो पहचानता था परन्तु नाम तथा किसका लड़का है, यह ध्यान में नहीं आ रहा था।

उन तीनों की चुभती दृष्टि उसके शरीर में सुइयां चुभो रही थी। न जाने ये ऐसे क्यों देख रहे हैं? बहुत देर बाद गांव जा रहा है इसलिए या बापू की वह चिट्ठी......! उनके देखने के भाव से उसे बहुत पीड़ा हो रही थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह इन लोगों की तीव्र दृष्टि को अपनी मुट्ठी में पकड़कर क़ैद कर ले।

बस से उतर कर जब वह गांव की ओर हो लिया था तब कितने ही लोग रास्ते में मिले थे। लगभग सभी परिचित थे। वह सबसे नज़रें चुरा कर चल रहा था परन्तु उसे लग रहा था कि हर कोई उसे देख कर अपने स्थान पर क्षण भर के लिए ठिठक कर खड़ा हो जाता है, उसके शरीर में अपनी तीव्र दृष्टि की सुइयां चुभोता है और आगे चल देता है। इन लोगों की आंखों में अपनी उंगलियां घुसेड़ देनी चाहिएं। जानवर कहीं के......! परन्तु वह निस्सहाय-सा परित्रस्त होता हुआ बढ़ता गया था।

गांव के बाज़ार में दाखिल होते ही वही दृश्य उसे फिर कचोटने लगा। बूढ़े, औरतें, जवान उसे देख चित्रलिखित-से हो गए। दुकानदार भी दुकानों से बाहर आकर खड़े हो गए। कुछ लोग एक-दूसरे को इशारों ही इशारों में 'कुछ' समझाने का प्रयत्न कर रहे थे। इतना स्तब्ध वातावरण देख कर बच्चे हैरान हुए जा रहे थे। वह वहीं खड़ा हो गया। उसका मन चीत्कार कर

उठा—'मैं कोई जंगली जानवर हूं। पागलखाने से भाग कर आया हूं या सर्कस का जोकर हूं? क्या दिखाई दे रहा हूं आप लोगों को? मुझे देख कर सब गांव वालों को सांप क्यों सूंघ गया है......? तुम सब के सब जानवर हो......गधे हो......बेवकूफ़ कहीं के!'

पर यह झल्लाहट मन के भीतर ही उबलकर रह गई। बाहर कुछ भी न निकला। उसके खड़े होकर घूरने से सब बगलें झांकने लगे। भिनभिनाहट-सी फैल गई।

उसके पास ही खड़ा एक बूढ़ा सबकी ओर उन्मुख होता हुआ बोला—"चलो-चलो, अपना-अपना कम्म करो। इत्थे कोई मेला नईं लग्गे दा ए।"

सोमू ने उस बूढ़े की ओर गहरी दृष्टि से देखा। राधे का बाप साईं था। सोमू को अपनी ओर घूरते पाकर वह भी बगलें झांकने लगा।

वह जल्दी से जल्दी घर पहुंच जाना चाहता था। न जाने बात क्या है? राधे से लिखवाई गई बापू की छोटी-सी विस्फोटक चिट्ठी का एक-एक शब्द उसके मस्तिष्क में तैरने लगा।

'हम तबाह हो गए बेटा। हमारा सब समाप्त हो गया। जल्दी से गांव आ जाओ।' तुम्हारा बापू—राम लाल शर्मा।

बस, इतनी-सी चिट्ठी थी। क्या तबाही हो गई? क्या बरबादी हो गई? उसकी समझ में कुछ नहीं आया था। दुर्शंकाएं दंश मारती रही थीं। मन में कितने ही विकृत चित्र बन कर मिट चुके थे। आज वह छः साल की उम्र काटने के बाद गांव आया है। छः साल पूर्व बापू के ताने सुन-सुन कर, उसके चिड़चिड़ेपन पर आक्रोश से भरा शहर भाग खड़ा हुआ था और वहीं नौकरी

कर, वहीं का हो गया था।

एक साल तक उसने घर पर कोई ख़बर ही नहीं भेजी थी। और फिर हर महीने चालीस रुपये का मनीआर्डर भेजना शुरू कर दिया था।

अपने घर की गली में घुसते ही उसके नथुनों में एक जानी-पहचानी गंध भर गई। इस गली में छः साल बाद भी कोई बदलाव नहीं आया है। सब पूर्ववत् ही है। मिट्टी और गोबर मिश्रित कीचड़ में उसने अपना बचपन गुज़ारा है। कितनी ही बार लथपथ हुआ है इस कीचड़ में। इसकी महक आज भी रोम-रोम में समाई हुई है। शहर में रहने के बाद भी उसे यह महक न जाने क्यों बुरी नहीं लगी। यह गंध उसके नथुनों में घुस कर उसे बचपन के अल्हड़ दिनों की ओर लौटा ले गई।

इस गली में अक्सर सब बच्चे इकट्ठे होकर खेला करते थे। उनका प्रिय खेल था—

उच्च क तेरी नीम
नीमा दी नीम
घार केड़ा दित्ता
ओ वाला ऽ ऽ ऽ ऽ

एक दिन खेलते हुए उसकी बहन गुड्डी ने खेल में गड़बड़ी कर दी थी। उसने झट एक थप्पड़ दे मारा था उसको। गुड्डी ने हाथों में कीचड़ का लोथड़ा उठा कर उसके चेहरे पर पटक दिया था। कितनी ही कीचड़ मुंह और आंखों में घुस गई थी। सारी रात उसकी आंखों में किरकिरी चुभती रही थी और गुड्डी उसके सिरहाने बैठी रो-रो कर उसकी आंखें मलती रही थी। उससे

माफ़ी मांगती रही थी।

और एक बार उसकी तथा राधे की लड़ाई हो गई थी। कांच की गोलियां खेलते हुए। यहीं कीचड़ में आकर दोनों गुत्थमगुत्था हो गए थे। कपड़े, सिर, मुंह कीचड़ से लथपथ हो गए थे। जब दोनों थक गए थे, तो एक-दूसरे को देख कर हंसने लगे थे। कितनी ही देर तक हंस-हंस कर एक-दूसरे को चिढ़ाते रहे थे। फिर बांहों में बांहें डाले उछलते-कूदते मन्दिर के सामने वाले पोखर में जाकर खूब नहाये थे।

घर के भीतर घुसते ही जंगली सन्नाटे ने उसके भीतर भयावहता भर दी। ऐसा लग रहा था, यहां पर एक युद्ध हो चुका है। युद्ध के बाद की शान्ति फैली हुई थी। उसे लगा, छः वर्षों ने उसके घर पर बदलाव के हस्ताक्षर कर दिए हैं। इन छः वर्षों में सब ध्वस्त ही हुआ है। खण्ड-खण्ड होकर बिखरा है। जीवित खण्डहर-सा उसका यह घर। उसका नहीं, उसके बापू का......।

जितनी तेज़ गति से वह आया था, घर के भीतर घुसते ही वह उतना ही पस्त हो गया। उसके पांव जैसे ज़मीन ने जकड़ लिए थे। घुटनों के जोड़ खुल गए थे। अपाहिज बापू से कैसे सामना होगा......? अपने बेटे की याद में रो-रोकर मां की खुश्क आंखें मरुस्थल-सी हो गई होंगी।

क्या वह उनमें भटक नहीं जाएगा ? मां के छलनी हृदय से बहती पीक उसके मस्तिष्क में चढ़ जाएगी और जवान बहन का रुदन। अब वह तेईस की हो गई है। उसके यौवन को वह कैसे सह पाएगा ? मां और बापू कैसे सहते होंगे ? उसे तो इस समय पति के घर पर होना चाहिए था। सोलह साल के बाद लड़कियां

गांव वालों की नज़रों में खटकने लगती हैं। तरह-तरह की बातें घरों में फुसफुसाने लगती हैं।

सोमू के पांवों के तलवों में जैसे छाले से उभर आए थे। पांवों के घिसटने से छाले फूट रहे थे। अन्तर्पीड़ा से उसकी हथेलियां पसीना बहाने लगी थीं।

"गुड्डी......" उसे अपनी आवाज़ उबड़-खाबड़ लगी। कमरे में कोई भी नहीं था। शून्यता अपने डैने फैलाए बैठी थी। दरवाज़े से आती रोशनी भीतर के अंधेरे को भगाने का असफल प्रयत्न कर चुकी थी।

अपनी आवाज़ का प्रतिउत्तर न पाकर वह परित्रस्त हो गया। क्या इस घर में कोई नहीं रहता ? वास्तव में यह घर ही है या जीवित खण्डहर......सब कहां गए ?

"गुड्डी ऽ ऽ ऽ ऽ......!" उसकी यह चिल्लाहट खुद उसे ही कंपा गई।

भीतर की कोठरी से सिसकारी निकली। किसी के सुबकने की आवाज़ उसकी चिल्लाहट का उत्तर देने लगी।

"यह तो मां की आवाज़ है। मेरी मां......" वह बड़बड़ाया। कमरे को पार कर वह कोठी की ओर दौड़ा।

बचपन में इस कोठरी में जाते हुए वह कितना डरा करता था। देखता भी नहीं था कोठरी की तरफ़। मां उसे हमेशा डराया करती थी कि इस कोठरी में बिल्ली, सांप, चूहे रहते हैं। उसके हृदय में यह भय इस क़दर भर गया था कि वह कभी भी कोठरी के अन्दर नहीं जाता था।

"मां ऽ ऽ......।"

सिसकियों में तेज़ी आ गई।

उसे कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। भयानक ग्रंधकार भीतर बैठे हुग्रों को खा चुका था।

"मां, देखो मैं ग्रा गया हूं। तुम्हारा सोमू ग्रा गया।" उसकी ग्रावाज़ भीग चुकी थीं।

सिसकियां ग्रौर सिसकियां चारों तरफ़ फैली हुई थीं।

"मां रोशनी करो ना। यह ग्रंधेरा मुझे बहुत डरावना लग रहा है। इस घर में ग्रंधेरे का ताण्डव नृत्य मेरी नसों को सुन्न कर रहा है।" उसने ग्रपनी ग्रांखों के ग्रागे हाथ रख लिए।

"सोमू, इस घर च हुन न्हेरे दा गै राज ऐ। एह न्हेरा हुन साडी जिंद ऐ। सूरज दा मुं ग्रस नईं दिक्खी सकदे। ग्रस हुन न्हेरा होई गए ग्रां ते न्हेरा कदें वी लो नईं दिक्खी सकदा......।" उसके बापू की खोखली ग्रावाज़ कोठरी में गूंज गई।

"नहीं, बापू नहीं, मैं इस ग्रंधेरे में खड़ा नहीं हो सकता। रोशनी कर दो। दिया जलाग्रो।"

भक् की ग्रावाज़ के साथ दियासलाई की पीली रोशनी ने कमरे को पीलिया कर दिया। पास ही ग्राले में रखा मृत दिया फिर जीवित हो गया। जीवित होकर उसने शाश्वत सत्य की भांति खुद को जलाना शुरू कर दिया।

कोठरी में मां की सिसकियां प्रभुत्व जमाए हुए थीं। ग्रपाहिज बापू छत की कड़ियों को घूरते हुए ग्रंधेरे की ही दुनिया में भटक रहे थे।

सोमू बापू की चारपाई के पास पहुंचा ग्रौर उनके पांव के पास चारपाई पर बैठ गया। मां उनके सिरहाने नीचे भूमि पर बैठी सिर घुटनों पर टिकाए विलाप कर रही थी। उसके सुबकने से सोम को उसके हाथों की उभरी नीली नसें थरथराती-सी लग

रही थीं। उसकी रोती हुई बूढ़ी ग्रावाज सोमू का ग्रंत:स्थल मथती जा रही थी।

उसके जाने के वाद मां ऐसे ही रोती होगी ग्रौर छः वर्षों से उसका यह रुदन बापू ने सहा होगा। गुड्डी ने कितनी ही बार मां की ग्रांखों से ग्रांसू पोंछे होंगे ग्रौर ग्रांसू पोंछते हुए उसकी ग्रपनी ग्रांखें बरस पड़ती होंगी। गुड्डी से सब बातें पूछेगा। वह उससे तीन साल बड़ी है तो क्या हुग्रा ? उसे सब बता देगी। ग्रब शीघ्रातिशीघ्र उसके विवाह का प्रबन्ध करना होगा।

उसकी त्रस्त दृष्टि बापू के चेहरे पर फैल गई। वे ग्रभी भी छत को ग्रपनी दृष्टि से बेध रहे थे। उनके चेहरे की झुर्रियों के जाल में जीवन ग्रटका हुग्रा लगता है। ग्रांखों की पुतलियां कितनी सर्द हैं ? उनका पांगुल्य पूरे परिवार पर ग्रभिशाप बनकर ग्राया था। टांग टूट जाने के बाद उन्होंने ग्रपने ग्रापको घर का क़ैदी बना लिया था। ग्रौर ग्राहिस्ता-ग्राहिस्ता सब सहज लगने लगा था।

'जब मैं यहां से गया था तब इतने बूढ़े नहीं लगते थे। ग्रपाहिज हो जाने के कारण चिड़चिड़े हो गए थे। हर समय खीझते रहते थे। उसी खीज के कारण ही उन्होंने मुझे कुछ उल्टा-सीधा कह कर पीट डाला था ग्रौर मैं क्रोध में उबल कर शहर भाग गया था। ग्राज इनका चेहरा एकदम सपाट लगता है। ख़ामोश, नीरव, शून्य-सा . गुड्डी से सब बातें पूछूंगा। ग्रोह ! गुड्डी……' उसका ग्रन्तर्मन स्वयं से ही बोल रहा था।

"बापू, गुड्डी कहां है ?"

उसका प्रश्न कोई भी प्रतिक्रिया उभार नहीं पाया। बापू सर्द ग्रांखों से छत को टकटकी बांधे घूर रहे थे।

"गुड्डी कहां है ? क्या कहीं गई हुई है ?" उसकी ग्रावाज़ भी न जाने क्यों ठण्डी हो गई थी।

मां की सिसकियां वेग पकड़ गईं। उसने ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर दिया। सोमू ने देखा, बापू की सर्द ग्रांखें भी पिघल गई हैं ग्रौर पिघलने से ग्रांसू उनकी ग्रांखों के कोरों में उभर ग्राए हैं।

उसका ग्रन्तर्मन दहक उठा—"ग्राख़िर तुम लोग कुछ बताते क्यों नहीं ? वह चिट्ठी क्यों लिखी थी ? गुड्डी कहां है ? गांव के सब लोगों का घूर-घूर कर देखना क्यों हो रहा है ? जब से मैं ग्राया हूं मां रोती जा रही है ग्रौर ग्राप भी कुछ बोलते क्यों नहीं ? मुझे कुछ तो बताग्रो। कुछ तो......।"

उसके प्रश्नों की चिल्लाहट का ग्रंश भर भी प्रभाव नहीं हुग्रा। सब कुछ बदस्तूर चलता रहा।

मां का सिसकना......बापू का छत की ग्रोर स्थिर देखना।

"मैं गांव के एक-एक ग्रादमी से जा कर पूछता हूं कि क्या ग्रपराध किया है मैंने जो सब मिलकर मुझे इतनी ख़ामोशी से मार रहे हो। सब बातें पूछता हूं। एक-एक से पूछता हूं। एक-एक से।" उसके मस्तिष्क की नसें गर्म हो गईं। ग्रांखों में रक्त उभर ग्राया। वह उठ खड़ा हुग्रा। मां को कन्धों से पकड़ झंझोड़ता हुग्रा बोला—"क्या ऐसे ही मरती रहोगी या कुछ बताग्रोगी भी ? कहां है गुड्डी......?"

सूजन भरी ग्रांखों से बहते ग्रांसू उसके घुटनों को भिगो चुके थे। सोमू की ग्रोर देखती हुई मरी-मरी-सी ग्रावाज़ में बोली—"ग्राऊं के दसां, सब किश मुक्की गया। ग्रपने बब्बा कोलों पुछ।"

हताश होकर उसने मां के कन्धे छोड़ दिये। उधड़े स्वर में बोला—"मैं राधे के पास जा रहा हूं। ग्रभी सब पता चल

जाएगा ।"

"राधे, ग्रो राधे......" सोमू बाहर से ही चिल्लाता हुग्रा उसके घर घुसा । सामने ही राधे का बाप साईं खड़ा था। उससे दृष्टि मिलते ही वह ठिठक कर खड़ा हो गया ।

"ग्रा सोमू, ग्रंदर लंगी ग्रा ।"

"राधे कहां है ?" उसकी ग्रावाज़ एकदम रूखी थी ।

तभी राधे भीतर से बाहर ग्राया । ग्रपने सामने सोमू को उखड़ी हालत में देख सब समझ गया। सोमू का सामना कर पाने की हिम्मत उसमें नहीं हो पा रही थी ।

"ग्र......ग्राग्रो सोमू, ग्रंदर ग्रा जाग्रो ।" लड़खड़ाए स्वर में राधे बोला ।

"नहीं, तुम बाहर ग्राग्रो । मुझे तुमसे कुछ बातें पूछनी हैं । सारे गांव वालों को न जाने क्या हो गया है ? स्साले घूर ही रहे हैं मुझे । बताता कोई कुछ नहीं । न मां, न बापू......।"

राधे चप्पल पहनकर उसके साथ चल पड़ा ।

"यहीं बैठ जाते हैं ।" सोमू ने एक पीपल के वृक्ष की ग्रोर इशारा किया ।

"नहीं ! ग्रगर सारी बात जाननी है तो उसके लिए उपयुक्त जगह ही चाहिए ।"

राधे ने ग्रपने ग्रापको कठोर कर लिया था । वह सब बता देगा । कुछ भी छुपाना ठीक नहीं ।

"हम तो नदी के घाट की तरफ़ ग्रा पहुंचे हैं ।"

राधे कुछ न बोला । वह शायद उसको किसी विशेष गन्तव्य

की ओर ले जाना चाहता था।

"यही है वह जगह।"

"कौन सी जगह ?"

"झाड़ियों से घिरे इस खाली स्थान को देख रहे हो न ?"

"हां।"

"यही है वह जगह।"

"तो फिर चलो बैठो।"

"तुम यहां बैठोगे ? इस जगह तुम्हारी बहन ने सिसक-सिसक कर दम तोड़ा था।"

"राधे ऽ ऽ ऽ ......" सोमू की चीख़ दूर-दूर तक लहरा गई। उसे लगा, जैसे उसकी आंखों में दो लाल-लाल अंगारे छोड़ती हुई सलाखें घुसेड़ दी हों। उसका रोम-रोम दहशत खा गया। आकाश खण्ड-खण्ड होकर बिखरने लगा।

"नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। मेरी गुड्डी मर गई। मेरी बहन ...... नहीं ऽ ऽ ऽ।" वह फिर चिल्ला उठा।

"अब पहले मुझे सब सुना लेने दो। यही है वह जगह, जहां तुम्हारी बहन ने बिलख-बिलख कर अन्तिम सांस ली थी। यहीं तुम लोगों की इज़्ज़त पर डाका पड़ा था। तुम्हारी जवान बहन का क्षत-विक्षत नंगा शरीर यहीं अपनी मां, बापू, अपने भाई सोमू को पुकार-पुकार कर लाश बन गया था। कोई भी नहीं आया था मदद के लिए। बाहर के तीन लोगों के साथ गांव के ही दो सफ़ेदपोश डाकुओं ने गुड्डी को जी भर कर लूटा था, उसके अंग-अंग को नोच खाया था और फिर गला दबा कर ......" राधे की सांस फूल गई थी। एक ही सांस में सब कह गया था। वह छाती

मलने लगा।

सोमू की तो जैसे कोई आत्मा काट रहा था। भयानक आरों से उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। उसके लहू को कोई भयानक प्रेत चूस रहा था। उसकी हड्डियां चिटख-चिटख कर टूट रही थीं।

राधे सामान्यावस्था में आ चुका था। उसने सोचा, लोहा गर्म है। एकदम सारी चोटें कर ही देनी चाहिएं।

"गांव में कितनी ही अफवाहें फैली हुई हैं। आसपास के सारे गांवों में भी इसकी चर्चा है। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। गुड्डी जवान थी। तेईस-चौबीस वसन्त पार कर चुकी थी। तुम लोगों को चाहिए था कि उसकी शादी कर देते। गांव में सोलह-सत्रह की हो जाने के बाद कोई भी अपनी लड़की को घर नहीं बिठाता। तुम भाग कर शहर चले गए और तुम्हारे बापू के पास था ही क्या, जो उसकी शादी कर देते ? एक-दो रिश्ता करने वाले आए भी थे परन्तु सिर्फ़ लड़की लेता ही कौन है ? लेकिन जवानी में शरीर की भी कुछ मांगें होती हैं। शरीर भी कुछ चाहता है। शरीर की भूख जब संतप्त करती है तो आदमी उस भूख को मिटाने के लिए कुछ भी कर डालता है। अच्छे-बुरे का परिणाम नहीं सोचता वह। गुड्डी भरपूर जवान थी। अपनी शारीरिक भूख को सह नहीं सकी। वह आई थी एक के लिए परन्तु यहां मिले पांच-पांच......।"

सोमू के आगे जैसे ताण्डव नृत्य हो रहा था।

गुड्डी की क्षत-विक्षत लाश..... मां की सिसकियां......बापू का छत की ओर स्थिर देखना..... गांव वालों का दृष्टि द्वारा सुइयां चभोना......।

"पुलिस के पास ख़बर तो पहुंच चुकी थी परन्तु वह आई नहीं, क्योंकि वे सब बड़े लोग थे। हममें से उनके ख़िलाफ़ किसी ने भी रिपोर्ट नहीं लिखवाई। लिखवाने का फायदा ही नहीं था। गुड्डी की लाश को चिता के हवाले कर दिया गया था।"

"कौन हैं वे लोग......कौन हैं वे ? तुम मुझे बताओ। उन हरामजादों को ज़िदा गाड़ दूंगा। एक-एक के टुकड़े कर दूंगा... मार डालूंगा।" चिल्लाते-चिल्लाते वह फफक उठा और फूट-फूट कर रोने लगा।

"उनके नाम बता भी दूं तो भी तुम कुछ नहीं कर सकते। कुछ नहीं हो सकता। इससे तो अच्छा है कि तुम ख़ामोश ही रहो। अपने बापू और मां की तरह.....जो हो गया सो हो गया।"

"नहीं, मैं किसी को भी छोड़ूंगा नहीं। अगर तुम नहीं बताओगे तो गांव जला दूंगा। सब को ख़त्म कर डालूंगा। सारे गांव में आग लगा दूंगा।"

"नाम बता देता हूं लेकिन मुझे पता है तुम कुछ भी नहीं कर सकते। एक तो मंगा है, दया राम सरपंच का लड़का। उसी के साथ गुड्डी गई थी। दूसरा कालू है। मंगे का जिगरी दोस्त जिसकी लड़कियों को छेड़ने की वजह से कितनी ही बार पिटाई हो चुकी है। उसने दो साल पहले सन्त राम के लड़के काकू का खून कर दिया था। परन्तु मंगे के कारण उसका बाल भी बांका नहीं हुआ था। बीनपुर के सरपंच का लड़का भी था और दो उनके शहरी दोस्त......"

सोमू के स्नायु फड़क उठे। भवें कसक उठीं। आंसुओं की रासें खिंच गईं। मुट्ठियों में आक्रोश उभर आया। वह थरथराता हुआ खड़ा हो गया।

"इस हरामज़ादे सरपंच का घर ही जला दूंगा। सबको जला कर राख कर दूंगा। जिस दौलत के वल पर वह अकड़ता है, सब फूंक दूंगा। सव... ...।"

वह आक्रोश में भरा चलने को हुआ।

राधे ने उसकी बांह पकड़ ली। उसने समझ लिया कि सोमू गुस्से की आग में जल रहा है। वह इस समय कुछ भी कर सकता है।

"पागल हो गए हो तुम ? उसके घर को जला कर क्या होगा? उसके पास दौलत है, दौलत सब कुछ कर सकती है। वे लोग अपनी रक्षा करना खूब जानते हैं लेकिन तुम तो अरक्षित हो। तुम पकड़े गए तो जेल चले जाओगे। तुम्हारा अपाहिज बापू और तुम्हारी बूढ़ी मां..... क्या होगा उनका ? गुड्डी तो मर गई अब वह वापस लौट नहीं सकती। मंगा और कालू यहां पर हैं ही नहीं। वे इस समय शहर में हैं।"

वह कुंठित-सा हो गया। उसका मस्तिष्क अवसन्न हुआ जा रहा था। नस-नस में नपुंसकता उभर आई। कितना निस्सत्त्व है वह?

'हां, मैं क्या कर सकता हूं ? गुड्डी मर गई, अब वह आ नहीं सकती। मेरी बूढ़ी मां..... मेरा अपाहिज वापू......! क्या कर सकता हूं मैं ? कुछ भी नहीं कर सकता। कुछ भी तो नहीं...मैं भी बूढ़ा हो गया हूं.........अपाहिज हो गया हूं। अपाहिज .....।"

रात को दस के बाद वह घर लौटा। जबकि गांव के लोग अपने-अपने घरों में घुस चुके थे। राधे को उसने तव ही भेज दिया था और खुद वहीं जड़ वना बैठा रहा था।

वह लोगों की तीव्र दृष्टि का सामना कर पाने में अपने आप को असमर्थ पा रहा था। इसीलिए अंधेरे में अपने आपको छिपाए हुए अब घर लौट रहा था।

मां ने बाहर वाले कमरे में बिस्तर लगा दिया था।

अपाहिज बापू इस समय भी कोठरी के अंधेरे में छत की ओर स्थिर दृष्टि से ताक रहे होंगे। किसी दिन उनकी दृष्टि ऐसे ही स्थिर हो जाएगी। उस कोठरी की तरफ़ देखते हुए उसे आज फिर डर लगने लगा था। बिल्ली, सांप, चूहों की कल्पना से नहीं, अपाहिज बापू की स्थिर दृष्टि की कल्पना से......।

वह बिस्तर पर वैसे ही हताश-सा लेट गया। मां थाली में भोजन ले आई।

तीन रोटियां और पानी-सी दाल.....।

वह हमेशा तीन रोटियां ही खाता था। बचपन की आदत मां को अब भी वैसी ही लगती होगी।

उसने थाली पकड़ ली। पानी का लोटा मां ने नीचे रख दिया। उसकी इच्छा हुई, मां से नज़र मिला कर बात करे। मां के सीने से लिपट कर रोए। फूट-फूट कर रोए...भीतर के सारे गुबार निकाल दे, और हमेशा-हमेशा के लिए इनके पास रह जाए या मां और बापू को शहर ले जाए। परन्तु वह अपने आप में एकदम निस्सहाय हो चुका था। नज़र मिलाना उसके वश की बात नहीं थी। वह अपने आपको कहीं से कमजोर पा रहा था। नपुंसक महसूस कर रहा था। जो करना तो बहुत कुछ चाहता है परन्तु कर कुछ भी नहीं पाता।

मां कोठरी में चली गई।

क्या मां और बापू भी भोजन करते होंगे? इस अवस्था में

वे कुछ खा पाते होंगे ? उसकी इच्छा हुई कि कोठरी में जाकर मां और बापू से भोजन के लिए पूछे। उनको अपने हाथों से भोजन खिलाए, लेकिन उठ न सका।

तीनों रोटियां उछल-उछल कर तांडव नृत्य करने लगीं। भयाक्रांत-सा वह जड़ हो गया।

अपाहिज बापू का छत की ओर स्थिर देखते रहना......बूढ़ी मां की अंतहीन सिसकियां...... गुड्डी की क्षत-विक्षत लाश......।

उसने थाली चारपाई के नीचे रख दी। भोजन करना उसके वश की बात नहीं रह गई थी। लोटा उठा पानी पीने लगा।

बिस्तर पर लेटते ही छत पर उसकी दृष्टि जम गई। जगह-जगह से दीमक खाई लकड़ी की छत .....मकड़ी के जाले...... मकड़ी के जाले में उलझता वह और सर से पांव तक पूरे जिस्म को चाटती हुई दीमक।

यह दीमक एक रात में ही उसे खा जाएगी। वह भीतर से एकदम खोखला हो जाएगा। दीमक खाई लकड़ी की तरह...... और सुबह जब लोगों की तीव्र दृष्टि उसे सुइयां चुभोएगी तो वह भुरभुरा कर गिर जाएगा।

कोठरी में से आती हुई मां की सिसकियां उसके कानों में उतरने लगीं।

अंधेरी कोठरी में बापू का छत की ओर स्थिर देखते रहना और मां का सिसकते रहना......क्या ये ऐसी ज़िंदगी ही जीते रहेंगे ? अंधेरी कोठरी के दो कोने बन कर, और क्या वह भी यहां रह कर इसी अंधेरी कोठरी का एक कोना बनना स्वीकार कर लेगा ? सीलन भरी, घुटी-घुटी-सी यातना भरी ज़िंदगी जिएगा वह......।

इससे पहले कि वह इस अंधेरी कोठरी की जिंदगी अपनाने पर मजबूर हो जाए, वह जाले में उलझे, दीमक खाए अपने शरीर को लेकर शहर चला जाएगा।

सुबह चार बजे ही वह घर से निकल जाएगा। जब सब सोए होंगे। मां भी, बापू भी......और गांव के लोग भी; ताकि उसे कोई देख न सके।



ज़िंदगी

"कहो देव, कैसे हो ?"

"हूं ! कितना अजीब लग रहा है तुम्हारा यह सवाल ?"

"वाह देव, इसमें अजीव वाली क्या बात है ? तुम्हारा हाल पूछना तुम्हें अजीब लग रहा है । मैं कुछ समझा नहीं ।"

"एक मुद्दत हो गई; किसी ने मेरा हाल नहीं पूछा । किसी ने कोशिश नहीं की। कोई पूछता भी कैसे? किसी का कोई अपना हो तो ही सुख-दुःख बांटा जाता है। अरे, शायद मैं कुछ ग़लत कह गया। सुख और दुःख नाम की तो कोई चीज़ ही नहीं, और इस दुनिया में कोई किसी का नहीं। किसी का किसी के लिए कोई अर्थ नहीं। हम सब बेअर्थ हैं पर अपने ऊपर यूंही अर्थों की तहें चढ़ाए बैठे हैं।"

"लगता है, ज़िंदगी से काफ़ी परेशान हो ?"

"ज़िंदगी ! हूं ! चंद ज़बर्दस्ती ली जा रही सांसों को तुम ज़िंदगी की संज्ञा दे रहे हो। वास्तविक ज़िंदगी तो सांसों की तार टूट जाने के बाद ही शुरू होती है। इस समय तो हम मरे हुए हैं।"

"ख़ैर छोड़ो ! आजकल कर क्या रहे हो ?"

"बाप की दो नम्बर की कमाई को दो नम्बर में ही उड़ा रहा

हूं।"

"यानि......?"

"शराब बस शराब।"

"तुम्हें इतनी शराब नहीं पीनी चाहिए। शराब इनसान के लिए ज़हर से भी ज़्यादा ख़तरनाक है। इनसान को तिल-तिल करके ख़त्म कर देती है।"

"विक्रम, इस दुनिया में इनसान है ही कौन ? और जब कोई इनसान ही नहीं तो क्या ज़हर और क्या ख़त्म होना ? यह सब फ़ज़ूल की बातें हैं। यह दुनिया जानवरों से भरी पड़ी है। सिर्फ़ जानवरों से। आज तक कोई भी मेरा अपना नहीं बन सका। कभी कभी ऐसा होता है कि आदमी जिस चीज़ से बचना चाहता है वही उसके साथ परछाई की तरह चिपक जाती है। वह चीज़ उसको हर मोड़ पर यूं घेर लेती हैं जैसे रेशम के तार रेशम के कीड़े को। क्या मैं सही नहीं कह रहा ? ऐसी ही ट्रेजेडी मेरे साथ हुई है। तुम यह भी सोच सकते हो कि मैं मानसिक रोगी हूं। मेरा दिमाग़ ख़राब हो गया है। तुम चाहे जो भी सोचो, मुझे कोई फ़र्क़ पड़ने वाला नहीं। मैं नफ़रत से नफ़रत करता था। चाहता था, हर कोई मुझे प्यार भरी नज़रों से देखे और मैं भी हर किसी पर प्यार के ख़ज़ाने लुटाता रहूं, पर हर किसी ने मुझसे नफ़रत की है। आदमी के अर्थहीन होने का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वह जो चाहता है, कभी नहीं होता। जिस पर भी मैंने अपना अधिकार समझा; वही मेरे अधिकार को खुर्दबुर्द करके नफ़रत के कीचड़ में बेदर्दी से फैंकता चला गया। और अब......अब यह शराब है न जों; यह मुझसे नफ़रत नहीं करती। जब तक चाहूं मेरा साथ देती है। मैं तो नहीं मानता पर

तुम्हारे शब्दों में कह रहा हूं, मैं उसी के लिए ख़त्म हो जाऊंगा जो मुझसे नफ़रत नहीं करता।"

"सुरभि तो तुम्हें जान से भी ज़्यादा चाहती थी। तुम दोनों के प्रेम में दरार कैसे पड़ गई ?"

"प्रेम शब्द दुनिया का सब से बेहूदा शब्द है। एकदम घिनौना। और जो क्षण गुज़र चुके हों मैं उनको कभी दोहराया नहीं करता। उनको याद करना भी बेवकूफ़ी की बात है। आदमी को सिवाए टीस के, खीझ के और कुछ नहीं मिलता।"

"तब तो तुमने शादी भी नहीं की होगी ?"

"आ......हा......हा......हा.. यह भी खूब कही। आग से जले हुए व्यक्ति को तुम कहो कि आग को हथेली पर रखो तो क्या वह आग को हथेली पर रखेगा ? सांप का काटा भी कभी सांप को गले में लिपटाए घूमता है।"

K. P. ABHA AMU... LIBRARY No.... Date...

"क्या तुम्हारे डैडी नहीं चाहते कि उनका वंश यहीं समाप्त न हो जाए। वह आगे बढ़े, जबकि तुम उनकी इकलौती संतान हो।"

"तुम्हें एक बात बताऊं विक्रम। तुम्हारे लिए मज़ेदार होगी। सो मच इंटरेस्टिंग फार यू। मेरे बाप ने वंश बढ़ाने के लिए खुद ही शादी कर ली है, पर उसकी बदक़िस्मती..... अब वह इस क़ाबिल ही नहीं रहा।"

"तुम्हें कैसे पता चला कि वे संतान पैदा करने के क़ाबिल नहीं रहे ?

"वन मिनट प्लीज़। वेटर ! एक डबल और ले आओ।"

"देव......"

"पांच डबल पी चुका हूं और छटा पीने जा रहा हूं, यही

कहने वाले हो न। मैं इतनी जल्दी होश खोने वालों में से नहीं। मेरे बाप ने जिससे शादी की है वह मुझसे लगभग तीन साल छोटी है। मेरी मां। मेरा बाप उसको सैटिस्फाईड नहीं कर पाता। स्साली एक रात मेरे कमरे में आकर मेरे बिस्तर पर लेट गई। मैं सहन नहीं कर सका। तुम ही बताओ, है दुनिया में किसी रिश्ते का कोई अर्थ, कोई महत्त्व ? मैं कहता हूं—नहीं। सब दुनिया नानसेंस है। मैंने उसके मुंह पर थूक दिया। वह बहुत गिड़गिड़ाई। सैक्स की भूख ने उसका दिमाग़ खराब कर दिया था। उसका क्या सारी दुनिया का दिमाग़ खराब हो गया है। सैक्स के नाम पर हर किसी की कुत्ते की भांति लार टपकती है। कहने लगी—'वे मुझे कुछ नहीं दे पाते, कुछ नहीं दे सकते। वे एकदम खाली हैं, खोखले हो चुके हैं। मैं मर जाऊंगी। तुम मुझे बचा लो। मैं उनकी पत्नी बनी रहूंगी और तुम्हारी प्रेमिका .....' अब बताओ—क्या यह दुनिया इनसानों की है ? हरामज़ादी......कुतिया कहीं की। परन्तु मैंने उसकी बैक पर ऐसी लात जमाई कि वह दरवाज़े के बाहर पड़ी कितनी ही देर छटपटाती रही। और दूसरे दिन... औरत के चरित्र को तो भगवान् भी नहीं समझ पाया। मेरी उस मां ने मेरे बाप के आगे मेरे चरित्र की ऐसी धज्जियां उड़ाईं कि उस घर से मेरा बोरिया-बिस्तर गोल हो गया। शिकायत क्या की होगी, तुम समझ ही सकते हो। नहीं भी समझ सकते। मैं तब से अलग फ़्लैट में अकेला ही रहता हूं और मेरी मां सोसायटी के नाम पर जाने कहां-कहां सैटिस्फाईड होने जाती होगी।"

"यह कांड हो जाने के बाद क्या डैडी तुम्हें खर्च देते हैं ?"

"मुझे जितनी ज़रूरत होती है कम्पनी से जाकर ले आता हूं। उसने कभी रोका नहीं। उसकी हिम्मत ही नहीं। उसके अंदर

के काले धब्बों से परिचित जो हूं।"

"यदि तुम चाहो तो......"

"यह 'चाहो' अब अपने वश में नहीं रहा। अपने वश में कुछ भी नहीं रहा। सब कुछ खण्ड-खण्ड होकर बिखर चुका है।"

"फिर भी तुम्हें यह फ़िलास्फ़ी-विलास्फ़ी छोड़ कर स्थिर ज़िंदगी जीनी चाहिए। कहीं सैटल होना चाहिए। यदि चाहो तो तुम्हारी शादी की बात चलाऊं। मेरी एक साली है। इस समय एम. ए. कर रही है। जम्मू यूनिवर्सिटी में।"

"संसार में कहीं कुछ भी स्थिर नहीं। सब कुछ चलायमान है। बहता पानी ही साफ़ रहता है। पानी को एक जगह बांध दो तो वह बदबू छोड़ने लगता है। और ज़िंदगी......ज़िंदगी को तुम लोग समझे ही नहीं। ज़िंदगी को तुम लोग जितनी खूबसूरत समझते हो वह उतनी ही बदसूरत है, भद्दी है, बदबूदार है, लिजलिजी है। और इस बदसूरती, भद्देपन लिजलिजेपन के पीछे जो खूबसूरत, सुगन्धित, महान् चीज़ छिपी है; वह है मौत। पर स्थिर वह भी नहीं। कुछ भी स्थिर नहीं है। फिर मैं......"

"अच्छा तो मैं चलता हूं।"

"क्यों, हो गए न बोर मेरी बातों से, हर कोई होता है। मैं हर किसी के लिए बेअर्थी हूं। मेरे अस्तित्व का किसी के लिए कोई अर्थ नहीं। किसी का किसी के लिए नहीं होता। अपने अस्तित्व का अपने लिए कोई अर्थ नहीं होता।"

"नहीं-नहीं देव, ऐसी बात नहीं है। मुझे कश्मीर मेल से वापस जाना है और गाड़ी छूटने में चालीस मिनट बाक़ी रहे हैं।" कल आफ़िस ज्वायन करना है इसीलिए जाना बहुत ज़रूरी है।"

"हां-हां, तुम्हें जाना है। तुम्हें जाना चाहिए। तुम जाओगे

ही। जिसे जाना होता है, वह चला ही जाता है। किसी को कोई नहीं रोक सकता, और फिर रोकने का फायदा ही क्या ?"

"कभी जम्मू आना। अपनी भाभी को ही देख-मिल लेना।"

"क्यों विक्रम ? देखने-मिलने से क्या हो जाएगा ? वो वो रहेगी। मैं मैं रहूंगा। हममें कोई बदल नहीं आ पाएगा। हम एक दूसरे को कुछ दे नहीं पाएंगे, एक-दूसरे से कुछ ले नहीं पाएग। तब अपने आपको बेकार ही अर्थों में बांधना बेवकूफ़ी है। वहां जाऊंगा तो अर्थों में बंधना पड़ेगा और बंधने के बाद मुझे ज़िंदगी के अर्थ समझाए जाएंगे; जबकि दुनिया में ज़िंदगी का अर्थ कोई नहीं जानता। यह दुनिया बेवकूफ़ नहीं तो और क्या है ? बेवकूफ़ दुनिया मरने के लिए जी रही है और मैं......मैं ज़िंदगी पाने के लिए मर रहा हूं।"

"अच्छा तो मैं चलता हूं।"



कैंसर

हीरा रसोई में बैठा खाना खा रहा था। उसी थाली में कचर-कचर करता हुआ मिट्ठू भी खा रहा था। मां गर्दन नीची किए रोटी बेल रही थी और बेलने के बाद पकने के लिए तवे पर छोड़ देती।

राधा आंगन में नीम के पास खटिया पर पसरी हुई थी। जब वह बाहर से आया था तो पल भर के लिए उसके पास खड़ा हुआ था। राधा आंखें मूंदे पड़ी थी। शायद सो रही थी या हो सकता है आंखे बंद किए अपने भीतर चल रही हो।

उसकी शक्ल देखकर वह अंदर ही अंदर रो पड़ा था। क्या हो गई है उसकी राधा ? जब उसकी दुल्हन बनके गांव में आई थी तो हर खेत, हर घर, हर गली में उसकी खूबसूरती को ले-लेकर चर्चाएं होती थीं। सारे गांव में उसको राधा-सी युवती चिराग़ ले कर ढूंढने पर भी नहीं मिल सकती थी। वही राधा आज कितनी मरियल हो गई है। सारी देह पिलपिली हो गई है और चेहरा झुलसे हुए बैंगन की तरह। अभी बेचारी की उम्र ही क्या है— सिर्फ़ पच्चीस साल। न जाने बेचारी को भीतर ही भीतर क्या खाए जा रहा है ?

पर क्या सारा दोष उसका अपना नहीं ? क्यों वह हर रोज़

राधा के शरीर को तोड़ता रहा ? उसके खून को चूसने के लिए अपने बीज डालता रहा। एक के बाद एक करके सात पौदे लगाए उसने......आठ सालों में। जितना राधा ने अपने भीतर से दिया, उसके एवज़ में उसने राधा को क्या दिया ? देता कहां से......? जितनी ज़मीन है उससे तो दो जून के लिए रूखी-सूखी रोटी का ही मसला हल नहीं होता।

"बेटे।"

"हूं !" हीरा अपने भीतर से निकल कर फिर रसोई में थाली के आस-पास लौट आया। मां की ओर देखा, वह एक-टक उसे ही देख रही थी। दाईं आंख में मोतियाबिंद उतर आया है। इसके बावजूद भी कामकाज में कोई सुस्ती नहीं करती। पूरा काम करती है। अब तो पोते-पोतियों वाली हो गई है। ये दिन तो भगवान् का नाम लेकर आराम से काटने वाले होते हैं। बहू, पोते-पोतियों से सेवा करवाने के दिन होते हैं लेकिन अब भी वह सारा दिन काम में जुटी रहती है। सब समझती है। उसके सीने का दर्द समझती है, बेटे का दर्द मां नहीं जानेगी तो और कौन जानेगा?

"हीरा बेटे, बहू को अब शहर ले जाओ। घर का इलाज भी बहुत कर लिया। बिहारी हकीम ने भी कितनी जड़ी-बूटियां दीं। कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। यहां के दवाखाने में भीं कुछ नहीं है। बस नाम का ही है। डॉक्टर बाबू को भी कुछ समझ नहीं आया। कहते हैं, इसको शहर के बड़े दवाखाने में दिखाओ। यहां पर इसका कोई इलाज नहीं।"

हीरा अवसन्न-सा बैठा रहा। शहर ले जाना पड़ेगा। बड़े दवा-खाने में दिखाना होगा। आना-जाना, दवाइयां, डॉक्टर बाबू के पैसे......और भी न जाने क्या-क्या खर्चा होगा ? क्या मालूम

कितना......? ढाई महीने पहले लड़की हुई और उसके साथ ही यह बीमारी भी आ गई। और अब उसके पास मुश्किल से डेढ़ सौ रुपये बचे होंगे। दस लोग खाने वाले हैं। फसल को तैयार होने में अभी बहुत समय है। उसका मन खट्टा हो गया।

उधर मां कह रही थी—"आज दोपहर तो बहुत खून गिरा है। अगर यही हाल रहा तो कितने दिन जिएगी बेचारी।"

"मां ऽ ऽ...! तुम उसके मरने के बारे में सोचने लगी हो। ऐसा सोचते हुए शर्म आनी चाहिए।" चाहा, चिल्ला कर मां को ऐसा कहे, पर कह न सका। उसकी आंखें भर आईं।

हीरा ने खाना वैसे ही छोड़ दिया। भीतर रोटी की जगह कुछ और ही भर गया था। उसने गिलास उठा पानी पिया और उसी में हाथ धो हाथों को अंगोछे से पोंछता हुआ बाहर आ गया।

आंगन में आ उसने देखा कि सबसे बड़ी लड़की कुंती राधा की टांगें दबा रही है। उसे कुंती पर बहुत प्यार आया।

एक अन्य खाट पर काकू सो रहा था। हीरा उसी के साथ जाकर लेट गया।

आकाश पर छाए गिनती रहित सितारे हीरा के आंगन की ओर देखते हुए झिलमिल-झिलमिल कर रहे थे।

बरसात के दिनों में कब बारिश होने लगे, इसका कुछ गुमां नहीं होता। जब हीरा सोया था तो आसमान एकदम साफ़ था। आधी रात को बरसात शुरू हो गई।

मां और कुंती पहले से ही अंदर सो रही थीं। बाक़ी सब बाहर सोए हुए थे। उसने जल्दी से उठकर काकू को उठाया और चारपाई को भीतर ले गया। बाहर आया तो राधा भी उठी हुई

थी ग्रौर ग्रपना विस्तर समेट रही थी। वच्चे भी कुनमुनाने लगे थे।

"राधा, ग्रंदर वाले कमरे में खाट लगा दी है। तुम जाग्रो, मैं बिस्तर ले ग्राता हूं।"

राधा ने पति की ग्रोर देखा फिर नज़रें झुका कर ग्रंदर चली गई।

सारे बच्चों को मां की चारपाई के पास ज़मीन पर दरी बिछाकर सुला दिया। मां की नींद टूट गई।

"बेटे, बहू ग्रंदर ग्रा गई?

"हूं।"

"मैं उसके पास सो जाती हूं तुम यहां सो रहो। उसे रात को कहीं मेरी ज़रूरत न पड़ जाए।"

"नहीं मां, तुम यहीं सोई रहो। वह ठीक है। दो पहर रात तो वीत गई है।"

सबसे छोटी वच्ची को उठाकर होरा ग्रंदर वाले कमरे में चला गया।

राधा की खाट के साथ ही उसने ग्रपनी खाट लगाई हुई थी। बच्ची को ग्रपनी वाली खाट पर लिटा दिया ग्रौर खुद राधा की खाट की तरफ़ लेट गया।

राधा ग्रांखें मूंदे पड़ी थी। वह चंद लम्हे उसके मुख की ग्रोर ताकता रहा।

"राधा..." उसका प्यार में डूबा कंपकंपाता सम्बोधन राधा की ग्रोर लपका।

"हूं।" राधा ने ग्रांखों पर से पलकों के लिहाफ़ उठाकर उन्हें नंगा कर दिया।

"अब कैसी है तबीयत ?"

"अच्छी हूं।" उसका स्वर एकदम क्षीण था।

"मां कह रही थी कि दोपहर को बहुत खून पड़ा है।"

वह चुपचाप छत की वल्लियों की ओर देख रही थी।

"मैं कल तुम्हें शहर ले जाऊंगा। वहां बड़े दवाखाने में दिखाऊंगा। तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगी। धनिया सुना रहा था कि शहर के दवाखाने में बड़ी-बड़ी मशीनें होती हैं इलाज करने वाली। उसका लड़का कितना बीमार था लेकिन शहर के दवाखाने में ठीक हो गया था।"

"नहीं, मैं शहर नहीं जाऊंगी। वहां न जाने क्या करेंगे मेरे साथ ? बीमारी भी तो कैसी जगह लगी है।" उसके स्वर से साफ़ ज़ाहिर हो रहा था कि वह भीतर से टूट रही है।

"तुम्हें देखकर दवाइयां ही देंगे और क्या करेंगे ? यहां पर रहकर कैसे ठीक हो पाओगी। शहर में अपनी मासी रहती है। उसका लड़का है न किशोर, उसकी बहुत वाक़फियत है। तुम घबराओ नहीं, सब ठीक हो जाएगा।"

"लगता है, अब यह सब ठीक होने वाला नहीं। कहां बचूंगी मैं ?"

राधा के शब्दों ने उसे झंझोड़-सा दिया। राधा हिम्मत खो बैठी है। ऐसी ज़िंदगी से बेजार हो गई है। बीमार आदमी जब खुद ही हिम्मत हार जाए तो......वह आगे सोच नहीं पाया। आंखों में आंसू छलछला आए।

"राधा, ऐसी बातें न करो। तुम्हारी इस हालत का ज़िम्मेवार मैं ही हूं। मैंने ही तुम्हारी इतनी बुरी हालत कर दी है। मैं तुम्हें शहर ज़रूर ले जाऊंगा। तुम्हारा वहां इलाज करवाऊंगा।

मेरे लिये न सही तुम्हें अपने बच्चों के लिए तो जीना है।"

राधा ने अपने पति की ओर देखा। उसकी आंखों में आंसू देख द्रवित हो उठी। उसको अपना पति एक मासूम, अबोध बच्चा नज़र आने लगा। उसके भीतर ममता का सागर उमड़ने लगा। वह उठकर बैठ गई। उसके आंसुओं को पोंछती हुई बोली—"छि: आप मर्द होकर रोने लगे, आप ही दिल को छोटा करेंगे तो मेरा क्या होगा ? औरत की ताक़त तो उसका मर्द ही होता है। मैं शहर जाऊंगी। आपके लिए, आपके बच्चों के लिए...... ।"

उसने झुक कर अपने होंठ पति के माथे पर टिका दिए।

हीरा को अपनी इस कमज़ोरी पर ग्लानि होने लगी। भावनाओं में बह कर वह कहां पहुंच गया था। राधा ने उसको कितना बड़ा एहसास करवाया है। राधा एक देवी है। ममता की जीती-जागती देवी है।

उसने दोनों हाथों में राधा का चेहरा दाब लिया और प्यार से सराबोर उसके चेहरे को बार-बार चूमने लगा।

किशोर को किसी ज़रूरी काम से जाना था। वह हीरा और राधा को लेडी डॉक्टर सुशीला भाटिया के रूम के बाहर बिठा कर चला गया। पहले से ही काफ़ी लोग बैंचों पर बैठे थे और बारी-बारी से उठकर कमरे के अंदर जा रहे थे।

बैठे-बैठे राधा को लगा कि खून रिसना शुरू हो गया है। उसके चेहरे पर घबराहट-सी फैल गई। कहीं कल दोपहर की तरह खून गिरने लगा तो......।

वह पहले ही कह रही थी कि शहर नहीं जाएगी लेकिन पति

की बात उसे माननी ही पड़ी। उसके इनकार करने से उनकी आंखों में आंसू उतर आए थे। कितना चाहते हैं वे उसे ? कितनी इज़्ज़त करते हैं उसकी ? कितना प्यार करते हैं उसे ? पर शायद उसकी इस ज़िंदगी में उनका प्यार नसीब नहीं। देवतास्वरूप पति की वह सेवा भी नहीं कर पाई। उसे पक्का यकीन हो गया है कि वह बचेगी नहीं।

'हे भगवान् ! मुझे अगले जन्म में भी इनकी ही पत्नी बनाना ताकि इनकी खूब-खूब सेवा कर सकूं।'

उसके मन की बात ने फुसफुसाहट का रूप धारण कर लिया था। हीरा ने समझा, शायद उसे कुछ कह रही है।

"कुछ कहा तुमने ?"

"हें, नहीं तो; कुछ भी नहीं कहा।"

"अजीब बात है। मुझे लगा, शायद तुम मुझे कुछ कह रही हो।" हीरा हैरान था। उसने राधा के होंठ हिलते हुए देखे थे। फुसफुसाहट सुनी थी पर उसकी समझ में कुछ नहीं आ सका था।

तभी उन लोगों की बारी आ गई। दोनों उठकर अंदर चले गए।

लेडी डॉक्टर नाक पर चश्मा चढ़ाये कुछ लिख रही थी। पास ही एक नर्स खड़ी थी।

दोनों ने हाथ जोड़ कर लेडी डॉक्टर को नमस्कार किया। वह अपने कार्य में व्यस्त थी।

नर्स ने उन दोनों को लोहे की बैंच पर बैठने का इशारा किया। दोनों चुपचाप बैठ गए। जैसे बटन दबाने से मशीन काम करती है वैसे ही उसके इशारे पर दोनों बैठे थे।

"तुम इधर आओ।" लेडी डॉक्टर अपना काम ख़त्म करके

राधा को बुला रही थी।

राधा उठकर उसके पास चली गई और उसके कहने पर कुर्सी पर बैठ गई।

फिर वह राधा से पूछताछ करती रही।

हीरा देख रहा था कि राधा बताने में संकोच कर रही है। यह मानव मन की स्वाभाविक शर्म है। वह कुछ खास अंगों की बीमारी बतलाने में हमेशा संकोच करता, है उसे छिपाता है। अपनी ओर से उसका आभास किसी को नहीं होने देता।

वह सोच रहा था, राधा को सारी बात खुल कर बता देनी चाहिए। इलाज करने वाले को सारी बातें मालूम हों तो ही ठीक इलाज होता है।

तभी राधा उठ खड़ी हुई और नर्स के साथ दूसरे कमरे में चली गई। तत्पश्चात् लेडी डॉक्टर भी उसी कमरे में चली गई।

हीरा को, उस कमरे में क्या हो रहा है, कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। कारण दरवाज़े पर सफ़ेद रंग का पर्दा लटक रहा था।

लगभग बीस मिनट के बाद लेडी डॉक्टर तौलिए से हाथ पोंछती हुई बाहर निकली और अपनी केर्सी पर बैठ गई।

हीरा पिघली हुई नज़रों से उसे ही देख रहा था। उसे लेडी डॉक्टर एक देवी लग रही थी जो उसकी राधा को ज़िंदगी का वरदान देने वाली थी। वह चाह रहा था कि उठकर उसके पांवों में पड़ जाए और कहे—'आप तो साक्षात् देवी हैं। मेरी राधा को बचा लीजिए, उसे ज़िंदा रहने का वरदान दे दीजिए। उसे किसी तरह बचा लीजिए।'

पर वह उठा नहीं, बैठा रहा।

तभी नर्स भी बाहर आ गई और पीछे-पीछे राधा। उसका

चेहरा एकदम गुलाल से भरा हुआ था। वह अपनी नज़रें पांवों पर टिकाए हुए थी।

"तुम बाहर जाकर बैठो। तुम्हारे आदमी को दवाई लिख देती हूं, और तुम मेरे पास आओ।"

राधा बाहर चली गई और हीरा बेंच से उठकर उसी कुर्सी पर जा बैठा जहां थोड़ी देर पहले राधा बैठी थी।

"क्या नाम है तुम्हारी घर वाली का ?" लेडी डॉक्टर का स्वर गम्भीर था।

"जी, राधा......" उसका गम्भीर स्वर सुन हीरा घबड़ा गया।

"कितने बच्चे हैं तुम्हारे ?"

"सात......।"

"भगवान् जाने कब इन लोगों को अक़्ल आएगी।" लेडी डॉक्टर मुंह में बड़बड़ाई।

हीरा उससे अब नज़र नहीं मिला पा रहा था। जाने क्यों ?

"जानते हो तुम्हारी बीवी को क्या बीमारी है ?"

"जी, पता नहीं।"

"उसके जननांग में कैंसर है।"

"जी कहां ?" कैंसर तो वह समझ गया था पर किस जगह है, उसकी समझ में नहीं आया।

"जिस जगह से बच्चा पैदा होता है। जैसे लक्षण इस जगह के कैंसर के होते हैं ठीक वैसे ही तुम्हारी बीवी ने बताए हैं। इस में मासिक धर्म बहुत समय तक बंद रहता है और फिर लगातार खून गिरने लगता है। लगता है, बीमारी ने जड़ें बना ली हैं। ऐक्स-रे लेना पड़ेगा। तभी सारी बातें पता चल पाएंगी। वैसे अब

इसका इलाज बहुत ही मुश्किल है। दो-तीन महीने से अधिक नहीं जी सकती वह। यह बातें उसको मत बताना। मरीज़ को ऐसी बातें नहीं बताई जातीं; लेकिन आदमी को कोशिश करनी चाहिए। असाध्य रोग भी कभी-कभी किसी चमत्कार की तरह ठीक हो जाते हैं। पर उसके लिए पैसा बहुत खर्च होगा। अगर चार-पांच हज़ार खर्च कर सकते हो तो इसे बाहर ले जाओ। बम्बई, मद्रास, इंदौर, बंगलौर, हैदराबाद में कैंसर इंस्टीच्यूट् हैं। वहां इसका ठीक प्रकार से इलाज हो सकता है। वैसे मैं दवाई लिख देती हूं......।" वह काग़ज़ पर दवाई लिखने लगी।

और हीरा के दिमाग़ में गूंज रहा था—कैंसर......कैंसर... कैंसर। उसने गांव में एक बार किसी से सुना था कि आजकल कैंसर बीमारी बहुत होने लगी है। जिसका कोई इलाज नहीं। और अगर है तो मौत। मर्दों को सिगरेट पीने से अक्सर हो जाता है। तब से ही उसने सिगरेट पीना छोड़ दिया है। उसी कैंसर ने उसकी प्यारी राधा को दबोच लिया है, और क्या उसका इलाज मौत ही होगा......?

नहीं......नहीं, यह नहीं हो सकता।

पर......पर वह कर ही क्या सकता है? डॉक्टर कह रही है कि इसका इलाज बहुत ही मुश्किल है। दो-चार महीने से ज़्यादा नहीं जी सकती उसकी राधा। फिर भी आदमी को कोशिश करनी चाहिए। और कोशिश करने के लिए चाहिए चार-पांच हज़ार रुपये। चार-पांच हज़ार......उसके पास तो चार पांच सौ भी नहीं। थोड़ी-सी ज़मीन है। अगर वह बेचेगा तो खाएगा कहां से? और फिर सात नन्हे-नन्हे बच्चे; जिनका वह बाप है। जिन पौधों को उसने लगाया है क्या उनको अपने हाथों

से ही काट देगा ? और उसकी बूढ़ी मां......।

उसकी बीवी को कैंसर है जिसका कोई इलाज नहीं। कोई हल नहीं। यदि हल ढूंढने की कोशिश करनी है तो उस के लिए चाहिएं रुपये और रुपये का उसके पास कोई हल नहीं। अगर वह उसका भी हल निकालेगा तो......दस जीव भूख से तड़प-तड़प कर कुत्ते की मौत मरेंगे। क्या पता तब भी राधा बचे या न बचे। सिर्फ़ कोशिश ही है न। उसके बाद भी राधा न बची तो उसका आगा-पीछा सब समाप्त। न वह, न बच्चे, न मां... कुछ भी नहीं बचेगा।

उसे लगा, वह कैंसर जो राधा को है उससे भी बड़ा और लाइलाज एक कैंसर है जो उसे हो चुका है और वह है ग़रीबी का......वह है रुपये के अभाव का; जिसका इलाज कभी नहीं हो पाएगा। कैंसर पीड़ित आदमी दो-चार महीने या एकाध साल तड़प-तड़प कर जिएगा और उसकी मुक्ति हो जाएगी पर ग़रीबी के कैंसर से पीड़ित आदमी को उम्रभर तड़प-तड़प कर जीना पड़ता है। कैंसर की बीमारी तो उन लोगों को होनी चाहिए जो ग़रीबी के कैंसर से पीड़ित न हों क्योंकि वे लोग कोशिश तो कर सकते हैं। वह अन्तर्जगत से फिर बाह्यजगत् में लौट आया। लेडी डॉक्टर उसे कह रही थी—"तुम ऐसा करो, यह दवाई लेकर इसे देनी शुरू करो। जहां से दवाई लोगे वह तुम्हें खाने का तरीका समझा देगा। साथ ही एक्स-रे करवा लो। एक्स-रे की रिपोर्ट परसों मुझे दिखाना। तभी बाक़ी दवाई लिख दूंगी।"

हीरा ने कांपते हाथों से काग़ज़ थाम लिया, और उन्हीं हाथों से नमस्कार करता हुआ बाहर निकल आया।

उसे लग रहा था, उसकी आंखों के कोने गीले हो गए हैं।

उसकी टांगों से शक्ति नाम की चीज़ निकाल दी गई है।

राधा बैंच पर बैठी हुई थी। चेहरे पर भोलापन, मासूमियत, पवित्रता छिटकी हुई थी। शर्म की हल्की-सी पर्त अभी तक उसकी पुतलियों के आगे जमी हुई थी।

हीरा की फूट-फूट कर रोने की इच्छा होने लगी। पर राधा को अंदर का तूफ़ान दिखाना नहीं चाहता था।

राधा के पास आकर सहज स्वर में बोला—"राधा, आओ चलें। डॉक्टर ने दवाई लिख दी है। कह रही थीं, तुम जल्दी ही ठीक हो जाओगी। मामूली-सी बीमारी है।"

उसके मुंह से ये शब्द कैसे निकल गए, खुद उसकी समझ में नहीं आया।



भरा-पूरा पुरुष

आदमी के व्यक्तित्व को, उसकी भावनाओं को, उसकी महत्वाकांक्षाओं को दबा कर रखने की, उस पर दूसरे के व्यक्तित्व को ठोंसते चले जाने की भी एक सीमा होती है। और सीमाओं का अतिक्रमण हमेशा भयावह स्थितियों की विस्फोटक सामग्री ले सामने आता है।

तरसेम के भीतर भी एक ज्वालामुखी पल रहा था। एकदम शांति के साथ। बचपन से ही पारिवारिक यंत्रणाओं के संघातों की प्रक्रिया ने उसके अन्तर्मन में ज़हरीली हवा भरे गुब्बारों को भर छोड़ा था। वह सब कुछ चुपचाप, ख़ामोशी से देखता था... सहता था......भोगता था। एकदम निष्क्रिय होकर।

पर कभी-कभी उसे लगता कि यह ख़ामोशी, यह निष्क्रियता उसको दी जा रही यातनाओं के प्रति उसका ठण्डापन, उसके पुरुषार्थहीन होने का लक्षण तो नहीं? उसके भीतर यह कायरता क्यों है......? सहमापन क्यों है......? क्यों नहीं वह भरे-पूरे पुरुष की भांति डटकर मानसिक प्राघातों का सामना करता है......?

लेकिन बचपन से ही रोम-रोम में भरी आतंक की दुर्गन्ध ऐसे समय में उसे तंद्रिल कर देती थी। चाहते हुए भी वह कुछ

नहीं कर पाता था।

कभी-कभी वह अपने में ही चौंक उठता। क्या यही उसकी ज़िंदगी है......? यही उसकी नियति है......? क्या उसको ज़िंदगी भर यूंही सहकते, सहमते, दहकते रहना पड़ेगा......? कुंठाओं से जकड़ी उसकी मानसिकता पग-पग पर विखण्डित होती रहेगी......? क्या मतलब है उसके यूं जिए चले जाने का......?

और वह खुद को प्रश्नों की सलीव पर लटका हुआ महसूस करता था। इसके वाद सोच के सारे द्वार बंद हो जाते थे। उस की सोच सिर पटक-पटक कर छटपटाती, चीखती, चिल्लाती... आज़ाद होने की मांग करती; लेकिन वह कुछ भी सुन नहीं पाता था या फिर सुनते हुए भी न सुनने जैसी प्रतिक्रिया उसके चेहरे पर फैली रहती थी।

एक दिन तरसेम ने प्रश्नों की सलीव तोड़ ही दी। उसकी सोच आज़ाद हो गई। सीमाओं का अतिक्रमण हो गया। ख़ामोशी से पलते ज्वालामुखी में खलबली मच गई। ज्वालामुखी का लावा अंतर की सूक्ष्म पर्तों को ध्वस्त करता हुआ फूटा था। गुब्बारों से निकली ज़हरीली हवा अपना असर कर गई। एकाएक ही तो हुआ था वह सव......।

एक नशीली खुशी में खोया-खोया वह घर में प्रविष्ट हुआ। भीतरी खुशी का आंशिक प्रभाव उसके चेहरे पर फैली हुई विशिष्ट आभा से प्रकट हो रहा था। खुश होता भी क्यों न ? आज उसने पहली वार किरण के साथ पिक्चर देखी थी। किरण ने वहुत वार आग्रह किया था पिक्चर देखने के लिए और आज उसने किरण के आग्रह को सिर-माथे पर रख लिया था।

एक अलौकिक आनंदानुभूति मिली थी उसे किरण के साथ पिक्चर देखते हुए। पिक्चर देखते हुए उसने कुर्सी के हत्थे पर अपना दायां हाथ रख छोड़ा था। इस चाह से कि किरण अपना हाथ उसके हाथ पर रख देगी। यह पागल मन की स्वाभाविक इच्छा होती है। पर उसका हाथ तीन घण्टे तक वहीं टिका रहा था। कुछ भी नहीं हुआ था। हां ! उसके बाज़ू में दर्द उठने लगा था। किरण की इस बात ने उसके हृदय में और अधिक श्रद्धा, विश्वास पैदा कर दिया था। अपनी इस हरकत से उसे अपने आप पर ग्लानि हुई थी और किरण पर बहुत-बहुत प्यार आया था। बीच-बीच में उन दोनों में पिक्चर सम्बन्धी बातें होती रही थीं।

उसके पोर-पोर में किरण की गौरवर्ण देह से उठती सपनीली गंध रची-बसी हुई थी। स्वप्नाविष्ट-सा वह घर में प्रविष्ट हुआ लेकिन कमरे में पहुंचते ही चाचा जी ने किसी बाज की भांति झपट्टा मार कर उसके अन्तस में प्रकाशित खुशी को नोच लिया। पोर-पोर में रची-बसी 'गंध' हवा हो गई, और उसका स्थान ले लिया आंतक की दुर्गन्ध ने। वह सहमा-सहमा जड़वत्-सा वहीं का वहीं खड़ा हो गया।

चाचा जी पूरी शक्ति लगा कर दहाड़ रहे थे—"यह क्या है ?"

इसके साथ ही उन्होंने कुछ काग़ज़ तरसेम के पैरों के पास फैंक दिए। एक पल में ही उसकी समझ में सारा मामला आ गया।

उसने वे काग़ज़ उठाये नहीं। नीची दृष्टि किए उनकी ही ओर ताकता रहा।

"मैं पूछता हूं, क्या है यह?" गुस्से की ज़ालिम छाया में उनका चेहरा सख्त हो गया था। छोटी आंखें और छोटी हो गई थीं। होंठ कुछ फैल गए थे।

"मैं बके जा रहा हूं और तुम्हारे कान पर जूं भी नहीं रेंग रही।"

उनका लोहे-सा सख्त वज़नी हाथ उसकी गर्दन पर पड़ा। कमरे में 'चटाक' की एक गूंज-सी फैल गई।

बदलाव के लिए एक क्षण ही काफ़ी होता है। और बदलाव का यही क्षण तरसेम ने पकड़कर अपने भीतर समाविष्ट कर लिया। मुट्ठी कसी गई और तत्काल ही ढीली गई। जबड़े एक-दूसरे से टकराए और अलग हो गए। आंखों की पुतलियां स्थिर हुईं और क्षणांत में हो शिथिल हो गईं। झन्नाटे से उसके भीतर कुछ टूटा और उसकी किरचें भीतर को लहूलुहान कर गईं।

उसने लपक कर काग़ज़ उठा लिए। उन काग़ज़ों को चूम आंखों से लगाता हुआ दृढ़ स्वर में कहने लगा—"यह मेरा पर्सनल मामला है।" कहते-कहते वह एकबारगी भीतर से कांपा ज़रूर, पर अब वह जहां पहुंच गया था, वहां से उसे लौटना नहीं था; बल्कि आगे ही बढ़ते जाना था।

एक क्षण के लिए चाचा जी हत्प्रभ रह गए। इसका इतना साहस कि उनके सामने बोल जाए। वे अपना पक्ष हमेशा ऊपर रखने के ही आदी थे। चाहे उनका पक्ष कमज़ोर ही क्यों न हो।

"पर्सनल के बच्चे ! क्या है यह ? किस मां ने लिखा है यह ख़त......हमारी इज़्ज़त को सरे आम नीलाम करने पर तुला हुआ है। मैं तुझे ज़िंदा गाड़ दूंगा।"

उन्होंने दायां घुटना उसकी जंघा पर दे मारा और ऊपर से दो-तीन थप्पड़ जड़ दिए—"लंगूर कहीं का, शक्ल नहीं देखता और चला है इश्क़ करने।"

और सीमाएं अतिक्रमण कर गईं। ज्वालामुखी फट पड़ा और लावा इधर-उधर बिखरने लगा। गुब्बारों से ज़हरीली हवा बाहर निकल आई।

"तुम कौन होते हो मुझे पूछने वाले ? मां ! बापू ! ! कौन हो तुम ? बापू ही जब मुझसे नहीं पूछते तो तुम कौन होते हो ? मेरे बापू के भाई......मेरे क्या हो ? मैं तुम्हें कुछ भी नहीं समझता......? और यह लव लैटर है। मेरी लवर ने लिखा है। मैं भी उसे लिखता हूं और लिखूंगा। वह भी मुझे लिखेगी। हम खुलेआम घूमेंगे और उसको इस घर में भी लाऊंगा। तुमने जो करना है कर लो...बड़ा आया इज़्ज़त वाला।" तरसेम का सारा शरीर थर-थर कांप रहा था, गुस्से के कारण।

तरसेम के वाक्‌बाणों से चाचा जी बिंध गए। किंकर्त्तव्य-विमूढ़-से हो गए। इस प्रकार के तीक्ष्ण जवाब की उनको आशा ही नहीं थी। पर यह अक्सर होता है कि व्यक्ति जिस बात की कभी आशा नहीं रखता, जिसके बारे में सोचता भी नहीं, वह एकाएक उसकी आंखों के सामने हो जाती है।

सम्बन्धों के टुकड़े उनको कमरे में फैलते हुए नज़र आने लगे। अप्रत्याशित घटना ने उनको भीतर तक हिला दिया। चेहरा आहत होकर सिकुड़-सा गया। लगा, जैसे शरीर में जान नहीं रही। आंखों में आंसू उतर आए। जिन्हें छुपाने के लिए उन्होंने चेहरा दूसरी ओर घुमा लिया। उसके अभिमान को गहरी चोट लगी थी। ज़िंदगी में कभी कोई भी इस प्रकार से पेश नहीं आया था। अपने

व्यक्तित्व को सबके ऊपर प्रभावी मानते थे वे।

तरसेम गुस्से की आग में दहकता हुआ सब देख रहा था।

इस अवस्था के ज़िम्मेदार वे खुद ही हैं। उन्हीं के द्वारा दिया ज़हर उगला है उसने……।

उसका अन्तस फट रहा था। हृदय के घावों से मवाद बह रहा था। मां और बापू के प्रति, इस सारे परिवार के प्रति, उसके भीतर घृणा का एक जलज़ला उठ रहा था।

'इन लोगों ने मुझे क्या दिया है…? क्या दिया है इन्होंने…? जन्म ! मैंने मांगा नहीं था। क्यों दिया……? जन्म देने के बाद अगर टुकड़े-टुकड़े करके मारना ही था तो क्यों पैदा किया……? इनके शारीरिक सुख के उन क्षणों में, मैं बीच में यूंही टपक पड़ा था तो तब ही क्यों नहीं किया इसका इलाज……? कुछ भी करते। क्यों मेरे अस्तित्व को इस कूड़ेदान में ला पटका……? और उसके बाद व्यक्तित्व की हत्या का यह लम्बा सिलसिला…

किरण ही मिली मुझे, जिसने मेरे व्यक्तित्व को समझा। उसको सौंदर्य प्रदान किया। उसको बनाने संवारने में अपनी पूर्ण श्रद्धा, विश्वास, प्यार समर्पित करने लगी है। मां का ममत्व, बहन का स्नेह, प्रेयसी का प्यार सब कुछ है उस नारी की आंखों में……उसको बोध होने लगा कि वह इस संसार में यूंही नहीं आया। उसकी भी कुछ न कुछ सार्थकता है। यह बोध करवाया है किरण ने……उसके निःस्वार्थ प्रेम ने……।

और ये लोग……ये जहरीले नाग उसे भी डसना चाहते हैं। जिंदगी में मुझे किरण ही मिली प्यार करने वाली और ये लोग उसे भी अपनी घृणा के पंक में डुबोना चाहते हैं। यह नहीं होगा। कदापि नहीं होगा। मैं लड़ूंगा……अब मुझ पर कोई अत्याचार

नहीं हो सकता ।'

गर्व के साथ छाती चौड़ी किए, गर्दन को अकड़ाए वह कमरे से बाहर आ गया । साथ वाले कमरे में उसका छोटा भाई पप्पू तथा चाचा जी का लड़का विक्की, चाचा जी के डर से किताबें खोलकर बैठे थे । कभी वह भी तो ऐसे ही किताब हाथ में लेकर बैठ जाता था । नस-नस से डर का भूत चिपका रहता था । ऐसे में याद किया हुआ पाठ भी भूल जाता था । याद करने की बात तो अलग रही......।

तरसेम को दोनों बड़ी हैरानी से देख रहे थे । चंद मिनट पहले घटी घटना किसी के लिए भी संभाव्य नहीं थी । चाचा जी के सामने कोई बोल जाए, ऐसी किस में हिम्मत थी......? पर उसने असंभाव्य बात को सबके देखते-देखते सम्भव कर दिया था ।

चाचा जी की लड़की रानी, तरसेम का छोटा भाई प्रदीप और उससे छोटी सुषमा ऊपर छत से झांक-झांक कर उसे देख रहे थे । सबके हाथों में पुस्तकें थीं और आंखों में कौतूहल......

रसोई घर में मां खाना बनाने में व्यस्त थी और पास ही चाची बैठी हुई थी । दोनों ख़ामोश......चुपचाप । जैसे उनको कुछ पता ही न हो और यदि हो भी तो कुछ लेना-देना न हो ।

उसने कहीं पढ़ा था कि मनुष्य को सिर्फ़ भगवान् से ही डरना चाहिए । लेकिन इस घर में सब मनुष्य एक आदमी से डरते हैं । उस आदमी से जो क्षणविध्वंसी है । सब कायर हैं......डरपोक हैं ।

तरसेम लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ घर से बाहर निकल गया ।

K.P. SAB… LIBRARY No. … Date. …

रणवीरेश्वर मन्दिर आकर वह उसी जगह बैठ गया जहां वह और किरण पहली बार मिले थे। उस जगह से उसे लगाव-सा हो गया था। यहां पर बैठने से उसके अशांत मन को शांति मिलती थी। इस साइकॉलोजी के पीछे शायद किरण का प्यार था।

आध घण्टा पहले हुई घटना उसके मस्तिष्क की पर्तों पर कौंध-कौंध जाती थी। रह-रहकर उसकी याद उसके रोम-रोम को सिहरा जाती। वह कांप-कांप उठता......।

वह नंगी ज़मीन पर लेट गया। नीले आकाश पर छितराए श्वेत बादलों के पार देखता रहा। टकटकी बांधे कुछ ढूंढता रहा।

वह ढूंढ रहा था कभी न आने वाले बचपन के कमज़ोर, रुग्ण, उदास, सहमे हुए, आतंक भरे दिनों को......उन दिनों को जिन्हें जिंदगी के स्वर्णिम दिन कहा गया है।

वह अपने उन अपंग दिनों को बता देना चाहता था कि अब वह एक भरा-पूरा पुरुष है। उनको दिलासा देना चाहता था कि उनका बलिदान सार्थक हो गया। आख़िर कुछ खोकर ही कुछ पाया जाता है।

और वे दिन उसके पास चले आए।

मां से उसे ममत्व भरा प्यार कभी नहीं मिला। वह तरसता था, कसकता था मां के प्यार के लिए। वात्सल्य भरे हाथ के लिए। स्नेहलिप्त शब्दों के लिए......।

लेकिन मां तो एक मशीन थी। काम करने वाली......बच्चे जनने वाली और पालने वाली......जानवरों की भांति।

जब वह शादी करके इस घर में आई होगी तो उसने भी

क्या-क्या सपने संजोए होंगे ? पर हरेक के सपने पूरे कहां होते हैं......? आते ही विन मां का देवर और ननदें मिलीं। उनको उसकी गोदी में डाल दिया गया और मां उनको पालती रही। और उधर उसकी अपनी मशीन भी चालू हो गई। बच्चे जनने वाली मशीन। एक-दो नहीं, पूरे आठ बच्चे जने उसने। अपना खून पिलाती रही उनको।

बेचारी ! किस-किसको अपना प्यार दे पाती। किस-किस पर ममत्व भरा हाथ फेरती। संयुक्त परिवार की बड़ी बहू होने के कारण सारी ज़िम्मेवारियां उसी पर थीं। सारा दिन झींखती रहती। काम में सिर दिए मरती-खपती रहती और बच्चे इधर-उधर बंदरों की भांति चीखते-चिल्लाते, आपस में लड़ते-झगड़ते। मां गुस्से में भरी उनको पीटने लगती। गालियां निकालती, रोती-कलपती—"क्या सुख मिला इस घर में शादी करके...? जानवरों जैसी ज़िंदगी हो गई है। मुझसे जानवर ही अच्छे जो थोड़ा आराम तो कर लेते हैं। पर यहां एक मिनट के लिए भी चैन नहीं। बच्चे सारा दिन जान खा डालते हैं और ये हैं कि इनको किसी बात की फ़िकर ही नहीं। बस, पैसा ! पैसा !! पैसा !!! यही इनके लिए सब कुछ है।"

पैसों को लेकर अक्सर घर में चिल्लाहट मची रहती। मां और बापू में खींचातानी होती। बापू चिल्लाते—"तुम्हें हर समय पैसों की ही पड़ी रहती है। जब देखो, हथेली पसरी हुई है। आसमान से तो नहीं टपकते पैसे......।"

और मां भी गुस्से में भरी दहक उठती—"कहीं ऐश नहीं करती आपके पैसों से......घर की ज़रूरतों के लिए खर्च होते हैं। इतनी भीड़ को पैदा कर लिया है तो क्या इनको भूखे मरने

दूं। यही चाहते हो तो ज़हर दे दो सबको......पैसों से ही इतना प्यार था तो क्यों इनको जन्मा ? सारा दिन मेरी जान खाते रहते हैं......।"

"पैदा तो तुमने ही अपने पेट से किया है......।"

"हां-हां, औरत होने की सबसे बड़ी सज़ा तो यही है। सब कुछ आदमी करता है और सज़ा मिलती है औरत को......।"

और कभी-कभी मां रो भी पड़ती थी।

ऐसे में उसने कई बार आधी रात के समय बापू को मां को मनाते देखा था।

तरसेम सब देखता, सुनता। इस मामले में उसे मां हमेशा निर्दोष ही लगी। उसे हर बार मां से एक प्रकार की सहानुभूति-सी होती। आंतरिक सहानुभूति......। वह चाहता कि मां से लिपट-लिपट जाये और उसकी बापू द्वारा मिली पीड़ा को दूर कर दे। पर वह कुछ भी कर नहीं पाता था। एक अजनबी की भांति खड़ा-खड़ा तमाशा देखता रहता।

और बापू पर उसे बहुत गुस्सा आता। सोचता, रुपये-पैसे किस लिए होते हैं......? परिवार को सुखी बनाने के लिए—फिर बापू क्यों इतना कमीनापन करता है? क्या उनका सब कुछ पैसा ही है......? ईमान......खुदा......बच्चे......पत्नी।

जेब खर्च के लिए उसे बापू से पैसे मांगने ही पड़ते। बिना मांगे कभी दिए ही नहीं और मांगने पर कभी-कभी डांट पड़ जाती—"हर वक़्त पैसे खर्च करने का ही काम रह गया है।"

उसकी कितनी इच्छा होती कि बापू उसे बाज़ार ले जाएं। कभी सिनेमा दिखा लाएं। उससे मीठी-मीठी प्यार भरी बातें करें। उसे नई-नई बातें सिखाएं। पर ऐसा कभी कुछ नहीं हुआ।

वह अकेला पड़ता गया। नितांत अकेला।

उसका अकेलेपन में जकड़े रहने का, चौवीसों घण्टे अपने आप में ही खोये रहने का सबसे बड़ा कारण तो चाचा जी ही बने थे।

न जाने किन क्षणों में कविता, कहानी लिखने का चस्का लग गया था उसको। हमेशा खामोश रहने की प्रक्रिया ने अपने भावों को प्रकट करने का माध्यम दे दिया था शायद।

वह उस दिन सबसे ऊपरी छत पर बैठा, मन में उठ रहे विचारों को कहानी का रूप दे रहा था। छत पर एकांत था इसलिए वहां ही अपने आपको 'एडजस्ट' किए हुए था।

नीचे से आती हुई चाचा जी की कड़कती आवाज़ उसके कानों के पर्दे फाड़ती हुई भीतर का सब कंपा गई थी। वे शायद किसी पर गरज-वरस रहे थे।

उसके मन में उठते विचारप्रवाह के सम्मुख एक बड़ी-सी चट्टान खड़ी हो गई। भय की चट्टान...आतंक की चट्टान। उसके भीतर दहशत सांय-सांय करने लगी। उसने सब कागज़ समेट लिए और चारपाई पर यूंही लेट गया। आकाश पर छाए शाम के सूनेपन को ताकता रहा। उसे लगा, ऐसा ही सूनापन उसके भीतर व्याप्त है।

AMBPHALLA LIBRARY No. Date JAMMU

गुस्सा तो इस परिवार के खून में समाया हुआ है। छोटी-छोटी बातों पर जानवरों की भांति चिल्लाने लगेंगे, दहाड़ने लगेंगे। कलेजा दहल-दहल जाता है इस प्रकोप से......

नीचे से पप्पू और विक्की के रोने की आवाज़ें आने लगी थीं उन दोनों की पिटाई हो रही थी। कारण, वे गली में खेलते हुए पकड़े गए होंगे।

उसका मन विद्रोही हो उठा। इच्छा हुई, नीचे जाए और चाचा जी को खूब डांट पिलाए कि कम से कम इन बच्चों को तो ज़िंदा रहने दो। उसकी तरह ही इनके व्यक्तित्व की भी हत्या मत करो। क्यों इस पूरे परिवार को बंजर बना रहे हो। इन फूलों को तो पूरी तरह खिलने दो।

हर वक़्त की डांट......पिटाई......गुस्सा......गालियां.... चिल्ला चिल्ला कर बोलना......चढ़ी हुई आंखों से ताकना...... ये सब बच्चों को उपेक्षित, अपने प्रति हीनता की भावना, आत्म-विश्वास-शून्य बना देते हैं। उनमें आंतक का ज़हर भर जाता है। उनके चेहरे हर समय सहमे-सहमे रहते हैं। अपने अंदर एक बहुत बड़ी कमी को महसूस करते हैं। जिसके कारण वे सबसे कटते चले जाते हैं। अधकचरा हो जाता है उनका व्यक्तित्व....

पर वह उठ नहीं सका था। उनसे इतना डट कर बोलेगा कौन? वह भी उन्हीं त्रास भरी स्थितियों से गुज़र कर अधकचरा हो गया है, आत्मविश्वास-शून्य है। 'इन्फिरियेरिटी कॉम्पलेक्स' में जकड़ा है।

उसे भी कितनी मार पड़ती थी। गली में दोस्तों के साथ वह खेल नहीं सकता था। पतंग नहीं उड़ा सकता था। सिनेमा वह नहीं देख सकता था। और इसी 'नहीं-नहीं' के बंधनों में फंसा सारे काम चोरी से करने लगा था। बाल सुलभ इच्छाएं सीधे ढंग से पूरी न हों तो टेढ़ा ढंग अपना लिया जाता है।

उसे तो हर समय पढ़ते ही रहना चाहिए। चाचा जी यही चाहते थे। जब भी वे देखें तो किताब हाथ में होनी चाहिए। वे उसे इंजिनियर बनाना चाहते थे। लेकिन चाहने से ही क्या होता है? उनको बनाने का ढंग ही नहीं आता था।

पढ़ते-पढ़ते कहीं झपकी लग जाती तो ऐसा थप्पड़ पड़ता कि दांत तक हिल जाते थे। अर्धचेतन-अवस्था की तो हल्की-सी मार भी ज़बर्दस्त होती है। एक बार इतनी ज़ोर का थप्पड़ पड़ा था कि उसका ऊपर वाला होंठ ही फट गया था।

चाचा जी घर आते तो चुपके से किताब हाथ में ले बैठ जाता। भीतर डर समाया रहता, मन कहीं और होता। होंठ यूंहीं बुद-बुदाते रहते। नज़रें पन्नों पर बिना कुछ समझे फिसलती रहतीं। पढ़ाई के नाम से ही उसका मन उचाट हो जाता था। पढ़ाई में तेज़ था पर पढ़ता नहीं था। कोई ललक नहीं थी पढ़ने की, और पढ़ता था तो चाचा जी के डर के कारण......शायद इसी कारण वह पढ़ नहीं सका, और न ही बन सका इंजिनियर......।

वह चाचा जी के सामने पड़ने से ही कतराने लगा था। सामने आते ही उस पर दहशत सवार हो जाती। वह सबसे कटता चला गया। अकेला रहने लगा। अपने आपको घर में अजनबी समझने लगा।

गुज़री हुई ज़िंदगी को खंगालते-खंगालते कितना समय निकल गया। उसे कुछ पता न चला।

ध्यान आने पर उसने पाया कि रात काफ़ी गहरी हो गई है। दस तो बज गए होंगे। मां उसके बारे में कुछ उल्टा-सीधा न सोच ले। वह कहीं घबराहट में न पड़ गई हो। वैसे इस समय घर में तूफ़ान के बाद की ख़ामोशी छाई होगी।

वह उठ खड़ा हुआ। अपने आप में नवीनता-सी महसूस कर रहा था। आज उसका बिखरा हुआ व्यक्तित्व, क्षार-क्षार व्यक्तित्व एक हो गया था। अपने आप में सम्पूर्ण व्यक्तित्व। जिसका

आधार बनी थी किरण। किरण के सामने अब उसका स्वस्थ व्यक्तित्व मुखरित हो उठेगा। एक भरे-पूरे पुरुष का व्यक्तित्व जिसकी सुगंध से वह निहाल हो जाएगा।

और घर में भी वह इसी व्यक्तित्व को लेकर जिएगा। अपने इस नवीन व्यक्तित्व की सबके समक्ष ऐसी सुगंध बिखेरेगा ऐसी सुगंध बिखेरेगा कि सब एक नई ज़िंदगी की-सी ताज़गी महसूस करेंगे। एक स्वस्थ परिवार की-सी ताज़गी......।



प्रतिक्रिया

मेरी दृष्टि उस मासूम कण्ठ को हिचकी लेते हुए देखती है और हिचकी ख़त्म होते ही उसके शरीर के अवयव लहरा कर रह जाते हैं। मृत्यु के भयानक पञ्जे उसकी आत्मा को झपट ले जाते हैं और तीन-चार साल का अस्तित्व में आया हुआ जीवन मौत बन जाता है।

वह महिला अपनी गोद में लेटे बच्चे को लहरा कर दम तोड़ते देखती है तो उसके मुख से एक सहमी-सहमी पीड़ा मिश्रित चीख फूटती है जो वातावरण को थोड़ा-सा कंपा देती है। वह उस निर्जीव बच्चे को कसकर अपने सीने से भींच लेती है परन्तु उस बेजान शरीर में कोई हरारत नहीं होती, कोई आवाज़ नहीं निकलती।

पास ही भूमि पर लेटा पुरुष चौंक कर उठ बैठता है। पत्थर दिल जान पड़ता है। बच्चा मृत्यु शैया पर पड़ा है और स्वयं सो रहा है।

उसके चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं उभरती। आंखों में दुःख का कोई बिम्ब नहीं उतरता। शायद उसे पहले से ही मालूम था कि उसके बच्चे की मौत निश्चित है। ग़रीबी का अभिशाप उसे पूर्वसूचित कर गया होगा कि ग़रीब इनसान के बच्चे को जीने

का कोई हक़ नहीं ।

मैं रुक-सा जाता हूं वहां पर, ऐसा होना स्वाभाविक भी है। ऐसे दृश्य देखने को इनसान उत्सुक-सा रहता है । तमाशबीन जो है इनसान । दूसरों का तमाशा देखने में उसे बहुत आनन्द मिलता है ।

देखते ही देखते लोग अर्धमण्डल बनाना शुरू हो जाते हैं । अपने-अपने सम्बन्धी रोगियों को देखने के लिए आए हुए लोगों के चेहरों पर भी क्षणिक घबराहट-सी फैल जाती है । कुछ स्वस्थ रोगी जो इधर-उधर घूम कर अपनी स्वस्थता का प्रमाण दे रहे होते हैं, वे भी उनमें सम्मिलित हो जाते हैं ।

अस्पताल के कर्मचारी, नर्सें और डॉक्टर अपने-अपने कार्यों में व्यस्त से दिख रहे हैं । पास से गुज़रते हुए उन पर कोई मानवीय प्रतिक्रिया नहीं उभरती । सपाट चेहरे ......सपाट चाल । उनके लिए यह नई बात नहीं । वे तो अभ्यस्त हो चुके हैं ऐसे दृश्यों के । परन्तु ऐसा लगता है कि इस अभ्यस्तता ने उनकी मानवीय सहानुभूति को निर्लिप्त कर दिया है या बहुत नीचे दबा दिया है जहां से वह सहज ही उभर नहीं पाती । कुछेक तो एक दृष्टि भी नहीं डालते, जैसे चाबी वाली मशीन चल रही हो वैसे ही चलते हैं ।

उस औरत ने अपनी टांगें पसार दी हैं और निर्जीव बालक को जांघों पर लिटा दिया है । पीड़ा भरी सिसकियां आंखों से आंसू साथ ला रही हैं । उस पुरुष के मुख से अभी तक एक शब्द या एक सिसकी तक नहीं निकली । आंखें अंदर तक खाली ही खाली दिखाई दे रही हैं । बस, दृष्टि उस बालक पर जम-सी गई है । ग़रीब का परिणाम सामने बिखरा पड़ा है ।

सब एकत्रित लोग आपस में कानाफूसी करने लगे हैं। सभी अपना-अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत कर रहे हैं। मेरी दृष्टि उन सभी चेहरों पर थिरकने लगती है। जैसे कुछ खोज रही हो। उत्सुकता और सहानुभूति के भाव उभर आए हैं कुछेक चेहरों पर परन्तु प्रकट करने में असमर्थ पा रहे हैं। कुछ लोग सरसरी दृष्टि डाल कर गुज़र जाते हैं।

मेरे पास एक चौदह-पंद्रह वर्ष का बालक आ खड़ा होता है और उचक-उचक कर देखने लगता है, परन्तु कुछ दिखाई न देने पर मेरी कमीज़ का कोना खींच कर पूछने लगता है—"बाबू जी, क्या हुआ ? कोई मर गया क्या ?"

न जाने क्यों मेरे मुख से आवाज़ नहीं निकलती। महसूस होता है कि गले में कुछ फंस गया है। चाहकर भी नहीं बोल पाता। चुपके से गर्दन हिला देता हूं।

"बाबू जी, अस्पताल में लोग ठीक होने के लिए आते हैं फिर यह क्यों मर गया......?"

एक झटका-सा लगता है मस्तिष्क को।

अबोध बालक के विस्मय भरे शब्द। कुछ भी उतर सुझाई नहीं देता।

तभी मुझे उस ओर आकर्षित हो जाना पड़ता है जिस ओर एक व्यक्ति अपनी दया भरी उत्सुकता को न दबा कर वहां पर बैठे पुरुष से पूछ रहा होता है—"तुम लोग वार्ड से बाहर क्यों बैठे हुए हो ? क्या तुम्हारे बच्चे को दाखिल नहीं किया ?"

वह पुरुष उस व्यक्ति की ओर नज़र उठाकर देखता है जो मात्र सहानुभूति जतलाने के लिए प्रश्न करता हुआ और पास सरक आता है।

उसके सपाट चेहरे पर कुछ पतली-सी रेखाएं बनने-मिटने लगती हैं, जैसे उस व्यक्ति द्वारा पूछे गए प्रश्न का नाप-तोल कर रही हों।

बाबू जी, हम लोगों को दो दिन हो गये गांव से आए हुए। कभी किसी हकीम के पास जाते हैं तो कभी किसी डॉक्टर के पास, परन्तु खाली जेब वालों को कोई पूछता भी नहीं। जिसके पास रुपये-पैसे न हों उसके लिए डॉक्टर के पास कोई समय नहीं होता। जो थोड़े-बहुत रुपये थे वे खर्च हो गए। कल से स्वयं को भूखे रख कर, सिर्फ़ पानी पीकर दो रुपये और कुछ पैसे बचाए थे ताकि ज़रूरत के समय काम आ सकें जो अब कफ़न के काम आएगे। कफ़न भी कहां आएगा? और चिता के लिए लकड़ियां......" वह क्षण भर के लिए ख़ामोश हो जाता है। एक लम्बी आह भरने के बाद फिर बोलने लगता है--"किसी ने बताया था कि अस्पताल में मुफ़्त इलाज होता है, वहां चले जाओ। हम सुबह के ही यहां पर आकर बैठे हुए हैं। पहले तो दरबान ने हमें घुसने न दिया। किसी तरह रो-रोकर अंदर घुसे तो यहां बिठा दिया। सुबह से इसी इंतज़ार में बैठे हुए हैं कि कब डॉक्टर साहब हमारे बच्चे को बुला कर देखें। बच्चे की मां ने सुबह से पानी तक नहीं पिया।" उसकी आवाज़ भीग-सी गई।

सभी की दृष्टि यंत्रवत् उस महिला की ओर उठ जाती है। उसके गर्म-गर्म आंसू बच्चे के मुख को नहला रहे होते हैं। सिसकियां भरती हुई बार-बार बच्चे को भींचती है। मुख को चूमती है। उसके लिए विशेष सहानुभूति उमड़ पड़ती है सभी चेहरों पर।

"दो-तीन बार डॉक्टर साहब के कमरे के अंदर जाने लगा

मगर जाने न दिया और यह कहा गया कि डॉक्टर साहब अभी मरीज़ों को देख रहे हैं। शायद हमारे लिए......।"

तभी उसे रुक जाना पड़ा। बायीं ओर के वार्ड से एक नर्स बाहर निकली। लाल-पीला चेहरा लिए हुए वह आते ही बरस पड़ी—"क्या शोर मचा रखा है तुम लोगों ने ? यह अस्पताल है कोई बूचड़खाना नहीं। डॉक्टर साहब पेशैंट्स को चैकअप कर रहे हैं और तुम लोग डिस्टरबंस दे रहे हो। गैट आऊट। चलो-चलो, जल्दी उठो और आप लोग भी जाइए। भीड़ मत कीजिए।" वह वहां खड़े लोगों से आग्रह करती है।

मेरी दृष्टि उस नर्स पर घूमने लगती है। अस्तव्यस्त-सी यूनीफार्म, होंठों की लिपस्टिक छितरी हुई, सफ़ेद स्कार्फ़ से कुछ बाल बाहर निकल कर बिखरे हुए। लगता है, किसी से धींगा-मुश्ती करके आई है।

सभी लोगों के चेहरों की सहानुभूति गायब हो जाती है और इधर-उधर बिखर कर खो जाते हैं।

मैं दो शब्द सहानुभूति के कह देना चाहता हूं ताकि मेरी मानवता का मूल्यांकन हो जाए परन्तु कह नहीं पाता और उस सहानुभूति को भीतर ही दबाए उस वार्ड की ओर बढ़ने लगता हूं जहां मेरे मित्र के पिता जी एडमिट हैं। उन्होंने 'अपैंडीसाईड' का आप्रेशन करवाया हुआ है।

वार्ड में घुसते ही बायीं ओर से तीसरा बैड उन्हीं का है। इस समय उनके पास मेरे मित्र की माता जी बैठी हुई हैं। नमस्ते कर पास ही पड़े लोहे के स्टूल पर बैठ जाता हूं। मित्र के पिता जी सो रहे होते हैं। माता जी घर के विषय में पूछने लगती हैं। मैं 'हूं-हां' करता हुआ उत्तर देने लगता हूं।

दृष्टि इधर-उधर घूमती हुई ठीक उसी बैड के सामने वाले बैड पर टिक-सी जाती है। बैड खाली पड़ा है और नीचे भूमि पर सफ़ेद कपड़े में लिपटी लाश। लाश के सिर के पास एक बुढ़िया बैठी है। झुर्रीदार चेहरे के बीच धंसी आंखों में फंसे जल बिन्दु बाहर निकाल पाने में वह अपने आपको असमर्थ पा रही है।

पास ही लोहे के स्टूल पर बैठा डॉक्टर रिपोर्ट बना रहा है। एक नर्स काग़ज़ात लिए पास ही खड़ी है। डॉक्टर अन्तिम कार्य-वाही सम्पन्न कर रहा है और पश्चात् लाश इस बुढ़िया को सौंप दी जाएगी। यह बुढ़िया अपने मृत पति को लेकर कहां जाएगी? मैं छः दिन से निरन्तर यहां आ रहा हूं परन्तु सिवा बुढ़िया के किसी अन्य व्यक्ति को नहीं देखा। जब भी देखा यही बुढ़िया अपने पति के पांव दबा रही होती। बेचारी के पास रोने के लिए भी कोई नहीं।

बुढ़िया के हाथ कांपने लगे हैं और आहिस्ता-आहिस्ता लाश के सिर पर घूम रहे हैं।

मेरी दृष्टि फिर वार्ड में घूमने लगती है। सभी मरीज़ों की दृष्टि उसी ओर टिकी हुई है। एक अजीब-सी बदहवासी छाई है सभी चेहरों पर। कुछ लोग भीतर ही भीतर आतंकित हो कांप रहे हैं। चारों ओर दहशत अट्ठहास लगा रही है।

मैं फिर बुढ़िया की ओर देखने लगता हूं। अचानक उसकी दृष्टि मेरी ओर उठती है। संभाल नहीं पाता उस रोती दृष्टि को। स्वयं को उस ओर से हटा लेता हूं। अस्तव्यस्त-सा पाने लगता हूं अपने आपको।

इस मनहूस वातावरण से निकल कर भाग जाना चाहता हूं। अजीब-से दृश्य नृत्य करते हुए आपस में गड्डमड्ड होने लगते हैं।

सोचता हूं, अभी आए हुए दो-तीन मिनट ही हुए हैं। दस-पंद्रह मिनट औपचारिकता वश बैठना ही पड़ता है। अगर अभी चला गया तो क्या सोचेंगी माता जी ? पर संभाल नहीं पाता अपने आपको। ऐसा महसूस होने लगता है कि लोहे के स्टूल पर कांटे उग आए हैं। कीड़े से रेंग रहे हैं स्टूल पर।

चीख़ पड़ने को मन होता है। इससे पहले कि मैं चिल्ला पड़ूं और सारे लोग मेरी तरफ़ आकर्षित हो मुझे पागल समझने लगें, मैं उठ पड़ता हूं और माता जी को नमस्ते करने के लिए हाथ जोड़ता हूं मगर वे अपने स्टूल पर बैठी झपकी ले रही होती हैं शायद रात को सो न सकी हों।

मुझे भरपूर अवसर मिल जाता है। मैं लम्बे-लम्बे क़दम उठाता हुआ वार्ड से बाहर निकल आता हूं। मेरे हाथ यंत्रचलित से गले तक पहुंच जाते हैं ताकि गले में अटकी चीख़ बाहर न निकल आए।

वह स्थान अब सुनसान है, जहां पर कुछ क्षण पहले एक स्त्री अपने बच्चे की लाश उठाए विलाप कर रही थी।

मैं और ज़्यादा तेज़ी से चलने लगता हूं। मुझे ऐसा लगता है कि मेरे पीछे कुछ हाथ आ रहे हैं जो मुझे भी लाश के रूप में परिवर्तित कर देना चाहते हैं।

तभी पीछे से किसी नर्स की ऊंची एड़ी वाले जूतों की 'खट-खट' आवाज़ गूंजने लगती है और 'खट-खट' आवाज़ के उतार-चढ़ाव के बीच किसी रोगी के चीख़ने की आवाज़ कांप उठती है।

मैं भागना शुरू कर देता हूं।



सिर्फ़ एक बार

उसकी आंखें मरुस्थल हो गई हैं। आभ्यांतर से तो परिस्राव हो रहा है पर ये मरुस्थल सब कुछ सोखते जा रहे हैं। इन मरुस्थलों की उष्णता से ही मृदु नींद की मौत हो गई है। उसका हृदय चाह रहा है कि वह फूट-फूट कर रोए और निर्बाध गति से रोती ही चली जाए, पर उसकी कभी कोई इच्छा पूर्ण हुई भी है।

सृष्टि ने एक दीर्घ उच्छ्वास छोड़कर करवट बदली। उसे लग रहा था, हर करवट के पश्चात् वह क्षणांत में ही थक जाती है। लाखों संवादिकाएं संसर्पण करती-सी लगती हैं। हर दूसरी करवट पहली करवट की अपेक्षा अधिक पीड़ित कर देने वाली है। करवटों की इस दुरुह्रह अवस्था से मुक्ति पाने के लिए वह पेट के बल औंधी लेट गई।

हाथ में पकड़ी चश्मे की 'कमानी' को आंखों से लगा, अनियंत्रित हो रहे अपने आपको नियंत्रण में न कर पाने की असमर्थता के कारण वह मानसिक यंत्रणाओं से संत्रस्त हो छटपटाने लगी।

जब भग्न हो चुकी स्मृतियां आक्रामक के रूप में मानसिकता को छीलती जाती हैं तो देह को किसी भी अवस्था में सुख-चैन

नहीं मिलता। अन्तर्द्वंद्व देह को कचोटता रहता है।

तेरह वर्षों तक जिन आघातों से घायल हो वह उसकी प्रतीक्षा में एक-एक क्षण दहकती रही......सहकती रही......बिखरती रही; जिन तेरह वर्षों तक उसकी स्मृति की चकाचौंध से अव्यवस्थित हो आंसुओं की तारें बांधती रही; उसकी छवि की एक झलक पाने के लिए सैंकड़ों मनौतियां मनाती रही, उन तेरह वर्षों का असफल परन्तु सुखद परिणाम आज मिला है। तेरह क्या... अब तो अट्ठारह वर्ष हो गए। पांच वर्ष तो इस सुखी (?) गृहस्थ जीवन के भी हो गए।

और आज अकस्मात् ही उस पार्टी में......वह दिख गया था। उसका आदर्श......उसकी कल्पनाओं का सम्राट्......उसके रोम-रोम में बसे उसके प्रथम और अन्तिम प्यार का नायक... पवित्र प्रेम का जीता जागता देवता। परन्तु वर्तमान अवस्था में उसे देख, सृष्टि को लगा था, मानो उपप्लव ही आ गया है। विधाता जैसे कोई नया अध्याय लिखने के मूड में है। नसों में अव्यक्त रोमांच की लहरें हिलोरें लेने लगी थीं।

हाईकोर्ट के जस्टिस अयोध्या प्रसाद सिंह ट्रांस्फर के उपलक्ष्य में फेयरवेल पार्टी दे रहे थे। प्रमुख-प्रतिष्ठित लोग ही आमंत्रित किए गए थे।

जज साहब ने सृष्टि को पति सहित बुलाया था परन्तु वे किसी इम्पार्टेंट मीटिंग में चले गए थे और उन्होंने जज साहब से टेलीफोन पर न आ सकने की असमर्थता प्रकट कर दी थी और क्षमा भी मांग ली थी। दोनों परिवारों में गहन व आत्मीय सम्बन्ध थे। सृष्टि अभ्यागत के रूप में नहीं बल्कि आतिथेय

के रूप में सबका अभिनन्दन कर रही थी।

पीले रंग की शिफान की साड़ी और उसी से मैच करते हुए ब्लाऊज़ में वह सोनजूही की भांति महकती हुई, प्रौढ़ावस्था की रेखा को छूते हुए अपने यौवन की गंध बिखेर रही थी। मदप्लुत आंखें किसी भी नवयौवना को मात दे सकती थीं। होंठों को तनिक भी फैलाते समय कपोलों पर बनने वाले भंवर सहज ही किसी को भी मोहित कर लेते थे।

"आपके नए जज साहब अभी तक नहीं आए। बेचारे बीवी-बच्चों के नखरों में फंसे कहीं देवरिया से चले ही न हों।" चुलबुलपना करते हुए सृष्टि हंस पड़ी।

जज साहब मुस्करा कर उसकी ओर देखते हुए बोले—"ऐसी बात नहीं हो सकती। वह अवश्य आएगा। मैंने अभी स्टेशन फ़ोन किया था। गाड़ी आज डेढ़ घण्टा लेट पहुंची है। बस, आता ही होगा।"

"अकेला ही आ रहा है या अपनी पल्टन के साथ......?"

"न जाने किस कारण से उसने शादी ही नहीं की। बच्चे कहां से आएंगे? वैसे बहुत ही जैंटल आदमी है और मजेदार भी।"

"च्च् च्च् च्च्! यह तो बुरा हुआ।" चेहरे पर मासूमियत के जाल को फैलाते हुए बोली। उस मासूमियत के जाल में भावों की ऐसी मछलियां फंसी हुई थीं जिससे लग रहा था कि वास्तव में ही कुछ बुरा हो गया है।

"भला क्या बुरा हुआ?" जज साहब शब्दों में विस्मय घोलते हुए बोले।

"बिना बीवी-बच्चों के। तब तो वह कोई बहुत ही टेढ़े क़िस्म का आदमी होगा। शुष्क, कठोर हृदय वाला......? जो पुरुष

कभी नारी के संसर्ग में न आया हो, वह पुरुष ख़ाक हुआ। ऐसे व्यक्ति भीतर से बहुत गंदे होते हैं। औरत के प्रति बहुत घिनौना दृष्टिकोण रखते हैं। औरत की भावनाओं को समझ नहीं सकते। ऐसे के साथ अपनी पटेगी कैसे ? ऐसे आदमी को मैं एक मिनट भी सहन नहीं कर सकती। फिर कोर्ट का साथ......"

"अरे, उसको एक बार देखना तो सही। तुम्हारी सारी थिंकिंग बदल जाएगी। विना देखे-सुने ही क्यों ग़लत राय बना लेती हो ? हर व्यक्ति एक-सा नहीं होता। वह है तो इंटरेस्टिंग पर ज़रा ख़ामोश नेचर का है। अव्वल तो बोलता नहीं और जब बोलता है तो उसकी एक ही बात में दस बातों का उतर होता है। अपनी तो यही इच्छा होती थी कि हर वक़्त उसी के निकट बैठे रहें और उससे बातें करते रहें।"

"आप क्यों उसकी साईड सेफ कर रहे हैं ? आए तो सही, देख लेंगे क्या चीज़ है ? मैं तो चेहरा देख कर ही अपराधी को पहचान जाने वाली हूं उसके भीतर को पढ़ना कौन सा मुश्किल काम होगा ?"

"अरे हां सृष्टि, तुम्हें उसकी एक मज़ेदार आदत बताऊं। उसके पीछे की बैकग्राउंड का तो मुझे पता नहीं। वह घण्टों बैठा अपनी दाईं हथेली देखता रहता है...निर्निमेष। तब तो उसकी यह आदत जुनून की हद तक थी। अब की कह नहीं सकता।"

"हें, यह तो बड़ी विचित्र आदत है। अपनी ही हथेली को घण्टों निहारते रहना।" पलकों को झपकाती हुई सृष्टि कह रही थी—"जज साहब, मैं बताती हूं कि वह ऐसा क्यों करता होगा ?"

"वह अभी आया नहीं और तुम उसके पीछे हाथ धोकर पड़ गई हो। आने के बाद तो उसे छोड़ोगी ही नहीं।" कहते हुए

जज साहब ठट्ठाकर हंस पड़े।

सृष्टि जज साहब की बात को दुर्लक्ष्य करती हुई अपनी ही गति से बोले जा रही थी—"शादी न होने के कारण वह अपने हाथ को इसलिए देखता होगा कि भगवान् ने ऐसा हाथ क्यों बनाया जिसमें बीवी-बच्चों की रेखाएं ही नहीं। वह अपनी उन रेखाओं को खोजता होगा। न मिलने पर भाग्य विधाता को कोसता होगा। यही बात हो सकती है। क्यों जज साहब ?"

"सृष्टि, बातों में तो तुमसे कोई जीत नहीं सकता। आख़िर पब्लिक प्रासीक्यूटर हो; पर जो तुम सोच रही हो, वह बात नहीं है। उसकी हथेली पर घाव के एक-दो चिह्न भी हैं। मैंने बहुत बार घाव का कारण पूछा था कि वे क्यों और कैसे हैं; पर वह हठी भी बहुत है। हर बार टालता ही रहा।"

"तो देखना जज साहब, मेरे एक बार पूछने पर ही बता देगा। तब आपको भी ज़रूर बताऊंगी।"

जज साहब से सृष्टि के इतने आत्मीय सम्बन्ध थे मानो उनकी अपनी छोटी बहन ही हो। उन दोनों का सहज और निश्छल व्यवहार सभी को यही धोखा देता था कि दोनों सगे भाई-बहन ही हैं। वे उसको बहन ही मानते थे। इस कारण वह उनसे चुहल-बाज़ियां करती रहती थी और उसकी किसी भी बात का जज साहब ने कभी भी बुरा नहीं माना।

जज साहब की नज़र कोठी के बाहर पार्किंग हो रही डी. आई. जी. मि. मिश्र की कार पर पड़ी। वे कार से उतर कर उनकी ओर ही आ रहे थे।

"आइए-आइए, डी. आई. जी. साहब। आप अकेले ही आए। मिसेज़ को साथ नहीं लाए।" जज साहब ने हाथ मिलाते हुए

डी. ग्राई. जी. मि. मिश्र का स्वागत किया।

"भई, जानते ही हो ऊपर से सख्त ग्रार्डर हुए हैं। चारों ग्रोर भाग दौड़ चल रही है। स्मगलरों ने वहुत तंग कर रखा है। उन्होंने काला धंधा छोड़ ग्रव लड़कियां बेचने का धंधा शुरू कर दिया है। इस केस की फाईल ग्राज ही मेरे पास ग्राई है। उस की छानबीन के लिए ग्ररेंजमैंट करवा रहा हूं। सीधा ग्राफ़िस से ग्रा रहा हूं इसलिए विना होम मिनिस्टर के ही ग्राना पड़ा।" डी. ग्राई. जी. मि. मिश्र ने वड़ी मासूमियत से कहा।

जज साहव ठहाका मार कर हंस पड़े। वे तो वात-वात पर ठहाके लगाने में प्रसिद्ध थे। डी. ग्राई. जी. मि. मिश्र ग्रौर सृष्टि ने भी उनकी हंसी में ग्रपने हास को मिश्रित कर दिया।

"ग्राप इनसे इंटरोड्यूसड हैं न......?" जज साहव सृष्टि की ग्रोर उन्मुख होते हुए वोले।

"नहीं तो......।"

"ग्राप हैं मिसेज़ सृष्टि वर्मा। पब्लिक प्रासीक्यूटर। इनके हसबेंड ग्राल को-ग्रापरेटिव सोसायटीज़ के डायरेक्टर हैं।"

"हैलो......।"

"हैलो......।"

"तो ग्राप हैं सृष्टि वर्मा। ग्रापके नाम से तो परिचित हूं लेकिन प्रत्यक्ष मिलने का सौभाग्य तो ग्राज ही मिला है।"

"जाग्रो सृष्टि, मि. मिश्र को हाल में ले जाग्रो।"

सृष्टि उनकी ग्रगवानी करती हुई उन्हें हाल में ले गई।

"हमें इजाज़त है ग्राने की?"

गंभीर स्वर सुन जज साहव चौंक कर मुड़े। सामने नवल

किशोर खड़ा था। लगभग ग्यारह साल के बाद उसे देख रहे थे। क्षणांश में ही उनके चेहरे पर उत्फुल्लता की रक्तिम आभा दीप्त हो उठी। उसे बांहों में ले लेने की आकांक्षा संचरित हो उठी। एक मुद्दत के बाद उनका प्रिय मित्र उनके सामने आया था।

"हैलो नवल, कैसे हो ?" जज साहब ने उसे बांहों में लपेट लिया—"यूनिवर्सिटी लाइफ़ के बाद तुम एक बार भी नहीं मिले।"

"मिलते कैसे ? तुम फर्दर स्टडी के लिए कैनेडा चले गए थे और जब आए तो शादी करके यहीं सैटल हो गए। यह तो अच्छा हुआ कि मेरी ट्रांस्फर यहां हो रही है वरना क्या मालूम कभी मुलाक़ात हो भी पाती या नहीं।"

"अब लगे अपनी फ़िलास्फ़ी झाड़ने। क्या अब भी वही हालत है जैसी पहले थी। यानि शादी-वादी की या नहीं ?"

"अपनी नियति कभी बदल नहीं सकती।"

दोनों अभी भी एक-दूसरे को आलिंगनबद्ध किए खड़े थे। जज साहब का पृष्ठ भाग द्वार की ओर था और अग्रभाग बाहर की ओर। और नवल किशोर का चेहरा द्वार की ओर था।

भीतर से सृष्टि जज साहब को संबोधित करती हुई आई—"वो आपका नया जज न मालूम कौन सी मिट्टी का बना हुआ है। जज होकर भी उसमें पंक्चूऐलटी नहीं। पांच के अब साढ़े छः......हैं......।" सृष्टि जहां रुकी, वहीं प्रस्तर प्रतिमा-सी जड़वत् हो गई।

सृष्टि के समक्ष यकायक किसी मायावी शक्ति ने अकल्पनीय चमत्कार करके, उसे चकाचौंध की गहरी खाई में धकेल दिया था। वह क्या देख रही है ? तेरह साल जिसे देखने के लिए

तरसती रही थी। एक-एक पल जिसका सुमरन करती थी; जिसके सुमरन में लिपटी रोती-बिलखती उसकी देह को किसी दूसरे के साथ बांध दिया था। उसकी इच्छा के विरुद्ध; जैसे गाय को ज़बर्दस्ती खूंटे के साथ बांध दिया जाता है।

आख़िर मां-बाप भी कब तक उसके यौवन की हरियाली को दग्ध करता कुंआरापन सह सकते थे ? उनमें दुनिया के कटाक्ष सहने की क्षमता क्षीण हो गई थी। चाहे समाज में वह वकील के रूप में सम्मानित थी, और ज़िंदगी भर एकाकी रह कर मां-बाप को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कर सकती थी पर नारी का अविवाहित रहना समाज स्वीकार नहीं कर सकता। समाज सौ तरह के दोष गिनना शुरू हो जाता है। तभी तो उन्होंने उसको किसी भी तरह घर से निकलकर एक विधुर के साथ बांध दिया था।

पर तेरह साल जिसकी मन ही मन आराधना करती रही, उसका 'वह' आज एकदम उसके समक्ष प्रकट हो गया है।

सच ही कहा गया है कि दुनिया गोल है। बिछड़े हुए कभी न कभी कहीं न कहीं मिल ही जाते हैं। पर देव दुर्विपाक! काश! आज से पांच वर्ष पूर्व मिलाप हो जाता तो क्या का क्या हो गया होता ?

नवल किशोर ने चौंक कर जज साहब को छोड़ दिया।

हें ! यह तो वही ....सृष्टि ही है। अयोध्या के घर... अयोध्या की पत्नी हो सकती है। हे भगवान् ! यह कैसा चमत्कारिक संयोग है। उसकी प्रेयसी उसके मित्र की ही पत्नी है।

सर्वस्व समर्पण के साथ जिसे पूजा था और आज भी वह जिसकी अखण्ड पूजा निर्बाध गति से कर रहा है, परन्तु जिसने

उसके समर्पण को, उसकी मृदु भावनाओं को, उसकी पूजा के सुमनों को पादाक्रांत कर दिया था, आज वह अट्ठारह वर्षों के बाद उसके सामने आई है और वह भी उसके मित्र की पत्नी के रूप में। अट्ठारह वर्षों से अन्तर्भावों के प्रीत गन्धित कुसुम जिस के नाम अर्पित करता आ रहा है वह आज......

"नवल, क्या बात है? तुम एकदम किंकर्त्तव्यविमूढ़ से हो गए हो।" जज साहब ने विस्मय से उसके चेहरे की ओर देखा। जिधर वह दृष्टिपात कर रहा था, उधर ही देखने लगे—"अरे, इस शैतान को देख कर घबरा रहे हो?"

"न......नहीं तो......" चेहरे पर फैली अन्तर्भावों की सलवटों को समतल करने का प्रयत्न करने लगा नवल।

"सृष्टि, इधर आओ। देख तुम्हारा नया जज आ गया है। अब पूछ लेना इससे सारी बातें।" कहते हुए उनका अट्टहास फूट पड़ा। सृष्टि हल्के-हल्के पग रखती हुई आगे बढ़ी। उसे लग रहा था, उसकी टांगों की शक्ति किसी ने स्याही सोख जैसी किसी विचित्र प्रकार की चीज़ द्वारा सोख ली है। उसकी धमनियों में रक्त की जगह पानी संचरित होने लगा है।

कुछ क्षण पहले कमलदल की भांति महकता हुआ उसका चेहरा निर्जीव, निष्प्राण-सा हो गया था। लगता था, किसी ने पीले रंग की पिचकारी छिटक दी है।

"ये हैं हाईकोर्ट के नए जस्टिस मि. नवल किशोर सक्सेना। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में मेरे क्लासमेट थे। महान् फ़िलास्फ़र और कवि हैं। मर्मस्थल को छूने वाली कविताएं रचते हैं। अभी तक कुंआरे हैं। भई, और जो-जो कुछ हो, वह तुम ही बता देना।" उनका उन्मुक्त ठहाका दोनों को तनिक भी मोहित न

कर सका। दोनों ऐसे खड़े थे मानो वहां हों ही नहीं, और यह सच भी था, वे बाहर से ही वहां खड़े थे; भीतर से न जाने कहां पहुंचे हुए थे। स्मृतियों की किन्हीं सुपरिचित वादियों में। उधर जज साहब कह रहे थे—"और यह है सृष्टि वर्मा। जिनियस पब्लिक प्रासीक्यूटर। इसके पति मि. अकुलेश वर्मा आल को-आपरेटिव सोसायटीज़ के डायरेक्टर हैं।"

दोनों ने हाथ जोड़ एक-दूसरे को नमस्कार किया। निमिष मात्र के लिए उनकी दृष्टि एक-दूसरे का आलिंगन करती हुई आंखों के रास्ते हृदय तक उतरती चली गई।

जज साहब की उपस्थिति के कारण वे दोनों परिस्थिति से भिज्ञ थे अतः दोनों ने अपनी नज़रें झुका लीं।

'तो सृष्टि अयोध्या की वाईफ़ नहीं......' नवल मन ही मन सोच रहा था। 'पर परिचय प्रगाढ़ है। कोर्ट के कारण ही होगा या हो सकता है कोई सम्बन्ध भी हो।'

सृष्टि तिरछी दृष्टि से उसकी दायीं हथेली को एकटक देख रही थी। वहां दो चिह्न दिखाई दे रहे थे। घावों के चिह्न......

नवल की उस विचित्र आदत की बैकग्राउंड सृष्टि की समझ में आ गई थी। पूर्व घटित घटना का स्मरण कर उसकी नस-नस में रोमांच की तरंगें उठने लगी थीं।

उसके खड़े होने का अंदाज़ वही था। सीना निकाल कर एक पूर्ण मर्द की भांति खड़े होने का ढंग, परन्तु थोड़ा-सा दायीं ओर को झुककर। बालों को संवारने के ढंग में भी कोई परिवर्तन नहीं आया था। बीच-बीच में बाल श्वेत हो गए थे जिसके कारण उसका व्यक्तितत्व और भी प्रभावी हो गया था। हल्की-हल्की मूंछों की जगह अब बिल्कुल सफाई हो गई थी। ठुड्डी के गड्डे

के मध्य तिल का चिह्न उसकी पहचान करने में एकदम सफल सिद्ध हो रहा था।

"तुम दोनों एकदम इतने सीरियस क्यों हो गए हो? क्या तुम लोग पूर्व परिचित हो जो एक-दूसरे को देखते ही पुरानी यादों से लिपट रहे हो?" जज साहब अचम्भित-से कभी नवल किशोर की ओर देखते तो कभी सृष्टि की ओर।

"न......नहीं तो......" इतना कह सृष्टि दृष्टि झुकाए भीतर चली गई।

सब कुछ वही......वही बोलने का स्टाईल। आंखों में वैसी ही मादकता; पर अंतर सिर्फ़ इतना था कि तब कुंआरेपन का नशा था और अब और ही प्रकार का। चाल भी वैसी ही। बस, थोड़ी-सी स्थूल अवश्य हो गई है परन्तु उसकी यह स्थूलता उसकी अनवद्यांगता की सहायक ही बनी है।

"क्या बात है नवल?" जज साहब को इस रहस्य का कोई छोर दिखाई नहीं दे रहा था।

"बात तो कुछ नहीं।"

"फिर यह कोयल की भांति चहकने वाली सृष्टि इतनी निर्जीव-सी क्यों हो गई है? और मुझे ऐसा लग रहा है कि तुम्हें ही देख कर। क्या तुमसे परिचित है? तुम्हारे चेहरे पर भी बारह बजते देख रहा हूं।" जज साहब उसके चेहरे पर दृष्टि गड़ाए उसके भीतर का अन्वेषण करने का प्रयत्न कर रहे थे।

पर वह भी जज था। उसने अपना चेहरा एकदम सपाट, प्रतिक्रियाहीन बना लिया था। भीतर बेशक एक आंधी चल रही थी। प्रलय-सी उथल-पुथल मची हुई थी।

"क्या यहीं से विदा कर देने का विचार है?" नवल ने

विषय को मोड़ देते हुए कहा।

"हें ! अरे मैं तो भूल ही गया था। समझ रहा था कि हम ड्राईंग रूम में हैं। तुम्हारा सामान वगैरा कहां है ?"

"सामान अभी लाया ही कहां है। दो बिस्तर और कुछ कपड़े-वपड़े लाया हूं। साथ नंदू को ले आया हूं।"

"यह नंदू कौन है ?"

"अपना नौकर है। वह अंदर चला गया है।"

"और मां जी को नहीं लाए ?"

"मां आजकल गांव गई है। वह यह दिन गांव में ही बिताती है। उसके आने तक यहां ठीक तरह से सैटल हो जाऊंगा।"

दोनों बातें करते हुए भीतर चले गए।

सृष्टि की आंखों के सामने अंधकार छा रहा था। भावों के चक्रवात चल रहे थे। एक विचित्र प्रकार का रोमांच नसों को उमेठ रहा था। उसे लग रहा था, अब यहां एक क्षण भी ठहरना असम्भव है। वह तो अपराधिनी है। नवल किशोर की अपराधिनी......उससे कैसे दृष्टि मिला पाएगी ? उसकी आंखों में व्याप्त मर्मांतक पीड़ा को कैसे सह पाएगी ? नवल को उसने जीवन भर के लिए दुःसह्य पीड़ा दी है और उसका अपना अपराध स्वयं उसके भीतर भी तो नासूर बना हुआ है जो आज भी रिस रहा है। वह भी तो उतनी ही व्यथा भोग रही है। परन्तु नवल उसकी आंतरिक यातनाप्लुत अवस्था से अज्ञात है।

दीप्ति को वहीं छोड़ वह चुपचाप बिना किसी से कुछ कहे टैक्सी से अपनी कोठी लौट आई थी। उसे पता था कि जज साहब का ड्राईवर चुन्नु मियां दीप्ति को छोड़ जाएगा।

उसके चुपचाप चले आने से जज साहब पर क्या बीत रही होगी और वे कितने नाराज़ होंगे, इसका आंशिक भी आभास उसे नहीं हो पा रहा था।

तबीयत खराब का बहाना बना कर वह उन्हीं क़ीमती कपड़ों में धम्म-सी पलंग पर गिर गई थी। मां जी कितनी बार कमरे का चक्कर लगा कर निराश लौट गई थीं परन्तु वह जैसे संज्ञा शून्य-सी हो गई थी।

"सृष्टि, जज साहब का फ़ोन आया है तुम्हारे लिए पूछ रहे हैं कि तुम वापस क्यों आ गई ? पार्टी शुरू होने से पहले ही... वे बुला रहे हैं।"

"उन्हें कह दें कि मेरी तबीयत ठीक नहीं।"

मां जी लौट गईं। वह फिर अपने भीतर खोती चली गई। कुछ भी होश नहीं रह गया था। उसके पति ने ही आकर उसे चेतनयुक्त किया था। खाने की इच्छा मर गई थी पर उन्होंने ज़बर्दस्ती एक ग्रास मुंह में डाल दिया था। इस बीच जज साहब का फ़ोन आया था कि दीप्ति आज उन्हीं की कोठी में रहेगी। नवल किशोर की इच्छा थी इस कारण।

कपड़े बदल कर वह पूर्ववत् अवस्था को प्राप्त हो गई थी।

तब से उसकी नस-नस को सैंकड़ों बिच्छु एक साथ डस रहे हैं। मस्तिष्क की नसों को कोई बार-बार कचोट रहा है। विद्रोह की भावनाओं से ग्रसित उसका अन्तर्मन विचित्र-विचित्र विचारों, संकल्पों के भंवर में फंसा हुआ है।

यह कोठी झूठ है। आल को-आपरेटिव सोसायटीज़ के डायरेक्टर मि. अकुलेश वर्मा, उसके पतिदेव भी झूठ हैं। दीप्ति भी झूठ है। पब्लिक प्रासीक्यूटर का ओढ़ा हुआ लबादा भी झूठ है।

सत्य है तो सिर्फ़ एक......और वह है नवल किशोर सक्सेना। उसका नवल......उसके नवल की 'नवल सृष्टि'......हानरेबल जस्टिस मि. नवल किशोर सक्सेना। वही उसका सत्य है उसका सर्वस्व है, और आज उसका सत्य, उसका सर्वस्व उसके सामने आ गया है। अब तक वह झूठ को चारदिवारी में जी रही थी; पर अब सत्य का स्वच्छन्द व्योम उसके समक्ष खुला पड़ा है।

लेकिन......लेकिन झूठ की इस चारदिवारी को, जो समाज ने उसके चारों ओर बनाई है, तोड़ कर सत्य के स्वच्छन्द व्योम में विचरना उसके लिए सम्भव होगा ?

और उसका सत्य क्या उसे अपना अंश समझेगा जबकि उसने उसके समर्पण को कुचल दिया था। उसकी भावनाओं की खिल्ली उड़ाई थी। उसे गंदा कीड़ा और बाज़ारू आशिक जैसे घृणित शब्दों की कसौटी पर कसा था।

और उसके चले जाने के बाद यह रोग स्वयं ही उसको लग गया था। उसके अपमान के तुरन्त बाद सहानुभूति के इंजेक्शन द्वारा प्रीत के किटाणु उसके रक्त में आ मिले थे और फिर अपने द्वारा किए गए उसके अपमान के कारण वह स्वयं पर ही विक्षुब्ध हो उठी थी। उसकी प्रताड़ना ने स्वयं उसे ही धिक्कारा था। प्रताड़ना के उस पंक में से ही प्रीत का पंकज खिल उठा था।

इस द्वंद्व में झटके खाते-खाते उसकी आंखों के समक्ष कॉलेज लाईफ़ की वह घटना घूम गई। उसने हाथ में पकड़ी चश्मे की 'कमानी' को छाती से लगा लिया।

"सृष्टि ऽ ऽ......ओ सृष्टि की बच्ची। कहां छुपी मरी है ?" रीडिंग रूम में घुसते ही अनोता उसे देख चहक उठी—"मैं पूरे

कॉलेज का कोना-कोना सर्च कर आई हूं मगर मेम साहब......"

"अब कुछ कहोगी भी या विना अर्थ के ही मेरा मग़ज़ चाटे जाओगी।"

दोनों अभिन्न सखियां थीं। ऐसे मज़ाक उनमें हर समय होते रहते थे।

"अरे, वाह री मग़ज़ वाली। इतना ही स्वादिष्ट है तेरा मग़ज़ जो कच्चा ही चाट जाऊंगी।"

"देख अनीता, मैं इस समय सीरियस टॉपिक पढ़ रही हूं। तू वीच में अपने ये दो कौड़ी के डॉयलाग बंद कर। एक नाटक में हीरोईन क्या बन गई अपने आपको राखी से कम समझती ही नहीं और वह चांस भी तो मेरे इनकार करने के वाद ही मिला था।"

"मेरी प्यारी-प्यारी सृष्टि, अब तो तू ही पूरे कॉलेज की हीरोईन बन जाएगी।"

"हूं! तुम ही बनो। यह सब तुम्हें ही मुबारिक हो।"

"तुम्हारे तानों का मुझ पर कोई असर नहीं होगा। ज़रा मेरे साथ चलना।"

"मैं नहीं जाऊंगी। मुझे पढ़ना है।"

"अरे, चल भी ना। जैसे तुमने पद्मश्री प्राप्त करना है।" अनीता उसको खींच कर बाहर ले आई।

दोनों कॉलेज के पिछवाड़े की ओर चल पड़ीं। अनीता उसको वातों में लगाए उस ओर लिए जा रही थी। कैमिस्ट्री लैब के एकदम पीछे वीरान पार्क था।

अनीता लैब तक उसके साथ आई फिर वहीं रुकती सृष्टि को कहने लगी—"उस सामने के वृक्ष के दायीं ओर जो झाड़ियां

हैं, उन्हीं भाड़ियों के पास......वहां कोई बैठा तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा है। जाओ, विश यू गुड्ड लक......" अनीता ने सृष्टि का हाथ पकड़ कर चूम लिया।

"क......कौन है वहां ? मैं नहीं जाऊंगी।" सृष्टि के चेहरे पर आश्चर्य और घबराहट का घोल फैल गया।

"मेरी राजकुमारी, क्यों घबराती हो ? कोई दैत्य नहीं है वहां। प्रीत की पूजा करने वाला एक पुजारी अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में बैठा है। जाओ ....." अनीता उसको पुचकारती हुई बोली।

"बताओ तो सही, वहां है कौन ? मैं अनजान व्यक्ति के क़रीब एकदम कैसे चली जाऊं।"

"वह तुम्हारे लिए अनजान नहीं है बल्कि जब तुम उसे देखोगी और उसका प्यार पाओगी तो अपने आपसे ही ईर्ष्या करने लगोगी कि ऐसे लड़के का प्यार तुम्हें मिल रहा है जिस की ओर सब लड़कियां ललचाई दृष्टि से देखती हैं और एक बात बताऊं, मुझे भी तुमसे डाह हो रही है पर क्या करूं ? अपनी अंतरंग सखी के सुख के लिए अपने हृदय की भावनाओं को कुचल रही हूं। लो मैं चली।" अनीता बिना उसकी बात सुने वहां से चली गई।

सृष्टि किंकर्त्तव्यविमूढ़ावस्था में कुछ क्षण तक वहीं खड़ी रही। वहां जाए कि न जाए, उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। न जाने वहां कौन है ? क्या कहेगा ? क्या करेगा ? अनीता कह रही है कि उसके लिए अनजान नहीं है। पर है कौन ? 'न बाबा न, मैं नहीं जाती।' निश्चय कर लेने के बावजूद वह लौट न सकी। अपने आप ही उसके पांव उस ओर बढ़ते चले

गए।

और जब वह वहां पहुंची तो जिसको देखा, उसे देख सृष्टि की आंखों में आक्रोश की लहरियां उफान लेने लगीं। चेहरा रक्ताभ हो गया। नासारंध्र क्रोधावेश से फड़फड़ाने लगे।

"ओह ! यू रासकल। तुमने मुझे बुलाया है। क्यों ?" उसने दनदनाता हुआ वाक्गोला छोड़ा।

"प्लीज़ सृष्टि, एक मिनट के लिए बैठो तो सही। तुम्हारे हृदय पर मेरे बारे में जो दुर्भाव अंकित हो गए हैं, उन्हें ही मिटाने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है।" वह युवक दीन स्वर में अपने पक्ष की सफ़ाई देते हुए बोला।

"मैं तुम्हारी सब बदमाशी जानती हूं। सहानुभूति जता कर मेरा शरीर पाना चाहते हो। बाज़ारू आशिक कहीं के। पांच-सात रुपये खर्च करके 'अड्डे' पर चले जाया करो। तुमने उस दिन नाटक की रिहर्सल के बहाने ही .....गंदे कीड़े, मैं तुम्हारा मुंह भी नहीं देखना चाहती थी। अनीता के कारण ही यहां पर आना पड़ा। तुमने उसको अपनी बातों में फांसा होगा। उसको 'वो' बात पता चल जाए तो वह भी तुमसे घृणा करने लगे। अब तक उस बात को मैं सीने में छुपाए हुए थी। नाटक में काम न करने का कारण मैंने किसी को भी नहीं बताया था परन्तु तुम्हारी इस धृष्टता को देख, प्रिंसिपल से शिकायत करके तुम्हें अरस्टीकेट करवा दूंगी। तुमने अपने आपको समझ क्या रखा है ? मैं उन चालू लड़कियों में से नहीं हूं जो तुम्हारे पीछे दुमछल्ला बनी घूमती रहें।" आक्रोश के आवेश में एकदम इतना बोलने से सृष्टि की सांस फूल गई थी। चेहरे पर क्रोध के मेघ अभी भी उमड़ रहे थे।

"नहीं ऽ ऽ ऽ......" उसने चिल्लाते हुए अपना दायां हाथ क़रीब पड़े पत्थर पर पटक दिया। सृष्टि के वाक्‌वाणों ने उसे विक्षिप्त-सा कर दिया था। हाथ में पकड़े चश्मे के शीशे चूर-चूर हो गए और शीशे के कितने ही टुकड़े उसकी हथेली को चीरते हुए भीतर घुस गए। खून के कतरे भूमि पर टपकने लगे परन्तु उस ओर से अनभिज्ञ, वह भर्राए स्वर में कहने लगा—"सृष्टि, यह सब झूठ है। तुमने मुझे समझा नहीं। कम से कम मेरे उद्‌गारों को तो सुन लेती। खैर! तुम्हें प्रिंसीपल के पास जाने का मौक़ा ही न दूंगा। मैं स्वयं ही तुम्हारी नज़रों से दूर, बहुत दूर चला जाऊंगा ताकि तुम्हारे हृदय के संताप मिट जाएं और तुम्हारी आंखों को शान्ति मिल सके। मैं तुम्हें दुःखी नहीं, सुखी देखना चाहता हूं।"

और वह उठकर लम्बे-लम्बे डग भरता क्षणांश में ही अदृश्य हो गया। जैसे किसी मायावी शक्ति ने उसे विपृप्लुत कर लिया हो।

सृष्टि का सारा क्रोध भस्म हो गया था। वह कभी उस ओर देखती जिधर अभी-अभी नवल अदृश्य हो गया था और कभी उस तरफ़ देखती जहां पत्थर के पास चश्मे के शीशे बिखरे पड़े थे। उसे लग रहा था कि वह स्वयं ही चूर-चूर हो कर बिखर गई है। पत्थर के क़रीब मिट्टी पर उंगली से खुदे हुए 'नवल सृष्टि' अक्षर रचना पर पड़ीं खून की बूंदें जम कर काली होती जा रही थीं।

उसका सर चकराने लगा। सारा भूमण्डल अलातचक्र की भांति घूमता लग रहा था। हाथ-पांव सम्भ्रांत से हो गए। वह वहीं पत्थर के पास बैठ गई।

मिट्टी पर अंकित 'नवल सृष्टि' पर उसकी दृष्टि जम-सी गई। उसे लग रहा था, नवल ने उसको पा जिस 'नवल सृष्टि' रचने की परिकल्पना की थी, उसका आज उसने खून कर दिया है। उसको ध्वस्त कर दिया है, और जिसका खून हो गया हो, उसको जीवित कर पाना......या ध्वस्त हुई दुनिया को पुनः बसाना...! वह नख-शिख कांप उठी।

उसकी मानसिकता पर आघात से होने लगे। संत्रस्त-सी वह उनकी चोट खा उद्विग्न हुई जा रही थी—'वहां कोई बैठा तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा है......विश यू गुड्ड लक। मेरी राजकुमारी, क्यों घबराती हो......कोई दैत्य नहीं है वहां......प्रीत की पूजा करने वाला एक पुजारी अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में बैठा है......तुम्हारे हृदय पर मेरे बारे में जो दुर्भाव अंकित हो गए हैं, उन्हें ही मिटाने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है ......यह सब झूठ है......तुमने मुझे समझा नहीं ..कम से कम मेरे उद्‌गारों को तो सुन लेती......तुम्हें प्रिंसीपल के पास जाने का मौक़ा ही न दूंगा......मैं स्वयं ही तुम्हारी नज़रों से दूर, बहुत दूर चला जाऊंगा ताकि तुम्हारे हृदय के संताप मिट जाएं और तुम्हारी आंखों को शान्ति मिल सके ...मैं तुम्हें दुःखी नहीं, सुखी देखना चाहता हूं......विश यू गुड्ड लक......प्रीत की पूजा करने वाला एक पुजारी अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में बैठा है...तुम्हारे हृदय पर मेरे बारे में जो दुर्भाव अंकित हो गए हैं, उन्हें ही मिटाने के लिए मैंने तुम्हें बुलाया है......कम से कम मेरे उद्‌गारों को तो सुन लेती......मैं स्वयं ही तुम्हारी नज़रों से दूर, बहुत दूर चला जाऊंगा ताकि तुम्हारे हृदय के संताप मिट जाएं और तुम्हारी आंखों को शान्ति मिल सके......मैं तुम्हें दुःखी नहीं, सुखी देखना

चाहता हूं......'

इन आघातों के भीषण प्रहार उसकी मानसिकता को पीड़ित करने लगे। आंखों के कोरों में आंसू छलछला आए। अन्तर्मन छटपटाने लगा। उसे लग रहा था कि उसने अपने भविष्य को क्षत-विक्षत कर दिया है।

'नवल सृष्टि' पर जमते खून में छटपटाते नवल की छवि प्रतिविम्वित होने लगी।

वह बुदबुदाने लगी—"मैंने यह क्या कर दिया ? विना समझे ही कटु वचन बोल कर उसे पीड़ित किया। हो सकता है, उस दिन उसने ज्ञानतः वैसा कृत्य न किया हो। अनजाने में ही सब कुछ हुआ हो। तभी तो वह कितना उद्विग्न, व्यथित और आर्द्र दिखाई दे रहा था। और आज मैंने गंदे, घृणित एवं लांछनास्पद शब्दों से उसे धिक्कारा है। ऐसे शब्द सुन कर कौन स्वाभिमानी व्यक्ति उद्विग्न नहीं हो उठेगा। फिर प्यार करने वाले, सच्चा प्यार करने वाले वैसे ही भावुक होते हैं। उसने अपने आपको कितना झुका लिया था। मुझे अपना होश नहीं खोना चाहिए था। पर अब तीर तो निकल चुका है।"

उसकी बुद्धि को जैसे काठ मार गया था। उसकी सोच शक्ति जवाब दे रही थी। कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि क्या करे ? अर्धविक्षिप्तावस्था में वह टुकड़े हुए चश्मे की ज़िंदा बची एक 'कमानी' को हाथ में लिए 'नवल सृष्टि' को निर्निमेष निहार रही थी। तंद्रिल अवस्था में वह न मालूम कितनी देर बैठी रही।

नवल उससे एक क्लास सीनियर था। कहां रहता है ? उसको कुछ भी मालूम नहीं था। अब......

तभी अनीता आशा की किरण बन उसके भीतर व्याप्त

अंधकार को मिटाती-सी लगी। उसमें पुनर्चेतना का आविर्भाव हुआ। आंखों में एक चमक-सी लहराई—'अनीता को नवल के विषय में सब मालूम होगा। वह उसके साथ नाटक की हीरोईन रही है।'

वह शीघ्रता से उठ खड़ी हुई। समय काफ़ी निकल चुका था। चश्मे की 'कमानी' उसने हाथ में ले ली थी।

उसने अनीता को सारे कॉलेज में छान मारा पर वह मिली नहीं। उसके कहे शब्दों से वह भयातुर हो रही थी। न जाने वह क्या कर बैठे? नवल के लिए वह इतनी व्याकुल क्यों हो रही है यह उसे स्वयं मालूम नहीं था। जिस नवल को उसने गंदा कीड़ा और बाज़ारू आशिक़ तक कह दिया था उसको मनाने के लिए वह तड़प उठी है। आख़िर क्यों? खुद उसे मालूम नहीं था। वह सिर्फ़ इतना जानती थी कि अब की हारी वह ज़िंदगी भर जीत नहीं सकेगी। जीतने का एक ही चांस है कि नवल के पास जाकर उसे बांहों में बांध ले। उसके चरणों में अपने आपको समर्पित कर दे। उसकी हथेली के घाव को चूम ले। उसकी 'नवल सृष्टि' की कल्पना को सार्थक कर दे। हमेशा-हमेशा के लिए उसकी हो जाए।

टैक्सी पकड़ वह अनीता के घर की ओर भागी। टैक्सी को घर के बाहर ही खड़ी करवा कर वह भीतर गई। अनीता लंच कर रही थी।

"अरे सृष्टि! तू इस समय। क्यों, क्या बात है?" उसके होंठों पर शरारत युक्त मुस्कान नृत्य कर रही थी।

परन्तु सृष्टि का चेहरा प्रतिक्रियाहीन देख उसे विस्मय ने आ घेरा। कहीं कोई गड़बड़ तो नहीं हो गई।

"तू खाना खा चुकी है या नहीं?" उसके स्वर में घबराहट मिली हुई थी।

"बस दो मिनट में खा लेती हूं। पर बात क्या है?" अनीता के चेहरे पर प्रश्नचिह्न लटक रहा था।

"बात बाद में। पहले जल्दी करो।"

"आ तू भी थोड़ा खा ले।"

"मेरे अंदर की भूख भोजन से मिटने वाली नहीं।"

अनीता जल्दी-जल्दी खाना खाने लगी। खाना खाकर वह उसे कमरे में ले आई और पूछने लगी—"अब बताओ, नवल से क्या-क्या बातें हुई?"

"तुम्हें उसका घर पता है?"

"हां, वह बावर्ची टोला में एक किराए के कमरे में रहता है। एक बार उसके कमरे में रिहर्सल हुई थी तब से ही जानती हूं।"

"तो क्या वह यहां का रहने वाला नहीं?"

"नहीं, वह अलमोड़ा के पास के किसी गांव का रहने वाला है। यहां पढ़ने के लिए आया है।"

"ओह! तो फिर मुझे शीघ्र ही उसके पास ले चलो।"

"पर बात क्या है?" अनीता स्ट्रैस करती हुई पूछने लगी। वह कुछ शंकित-सी हो उठी थी। अवश्य कुछ अनर्थ हो गया है—"क्या वह तुम्हें वहां नहीं मिला था। मुझे खुद उसी ने ही तुम्हें भेजने के लिए कहा था याकि उससे झगड़ा हो गया है।"

"अनीता बातें बाद में भी बता सकती हूं, पहले उसके पास ले चलो वरना मौक़ा निकल गया तो......" उसका स्वर क्लेद-पूर्ण था।

"मम्मी छत पर हैं। मैं उनको कह कर अभी आई।"

दोनों उसी टैक्सी से बावर्ची टोला में उसके निवास स्थान पर गईं पर पंछी उड़ चुका था। मकान मालकिन ने बताया—"वह थोड़ी देर पहले ही आया था। उसकी दाईं हथेली ज़ख़्मी थी। उस पर उसने रूमाल बांध रखा था। आते ही सामान बांध कर हिसाब चुकता करके चला गया। मैंने कारण पूछा पर उसने कुछ भी बताया नहीं। बेचारा बहुत अच्छा लड़का था। निहायत ही शरीफ़। ऐसे लड़के आजकल की दुनिया में कहां मिलते हैं?"

वे दोनों बस स्टैण्ड पर गईं और वहां से स्टेशन; पर उसे न मिलना था न वह मिला। वह दूर, बहुत दूर चला गया था। पर पर उसके हृदय के संताप बढ़ गए थे। आंखों की शान्ति छिन गई थी। उसको सुखी देखने वाला हमेशा-हमेशा के लिए दुःखी कर गया था।

उसके लिए वह तड़फड़ाने लगी। नवल के रोग के किटाणु उसके भीतर घुस कर संसर्पण करने लगे थे परन्तु उपचार करने वाला नहीं था। नवल की स्मृति के रूप में टूटे हुए चश्मे की 'कमानी' उसके पास थी जो हर समय नवल की याद दिलाती थी।

वही नवल उस दिन का गया आज अट्ठारह वर्षों के पश्चात् देखने को मिला है। जज साहब कह रहे थे कि उसने शादी भी नहीं की है। शादी करता भी कैसे......? उस जैसी नारी ने उसका सर्वस्व लूट कर उसे कंगाल, अकिंचन बना दिया था। वह जिससे शादी करता बदले में उसे क्या देता?

वह उसकी अपराधिनी है। उसने ही तो नवल की नवनीत सी मृदु भावनाओं का खून कर दिया था। उसकी 'नवल सृष्टि' को ध्वस्त कर दिया था। उसको वाक्‌बाणों से बींध कर पंगु

वना दिया था।

उसकी पांगुल्यावस्था ग्राज भी विद्यमान है। ग्राज भी वह उसी क्षत-विक्षत हालत में है। उसकी घायल भावनाग्रों से रक्त क्षरण हो रहा है। उसकी भग्न 'नवल सृष्टि' में दहशत भरे झंझावात चल रहे हैं।

लेकिन......वह खुद एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की भार्या बन सुखी जीवन भोग रही है।

'नहीं-नहीं...मैं सुखी नहीं हूं। यह सब ग्रपने ग्रापसे वंचना करना है। मैं ग्राज भी पीड़ित हूं, घायल हूं। वह घाव नासूर वना ग्राज भी मेरे भीतर रिस रहा है। नवल मेरा सत्य है ....ग्रौर मुझे ग्रपने सत्य की ग्राज भी ज़रूरत है। मैं नवल को प्यार करती हूं; सर्वस्व समर्पण के साथ प्यार करती हूं। ग्राज भी मैं उसकी पुजारिन उसकी पूजा में संलग्न रहती हूं। मेरी ग्रात्मा ग्राज भी उसे पाने के लिए तृषित है, चाहे ऊपर से मैंने ज़बर्दस्ती समाज द्वारा पहनाया हुग्रा झूठ का लवादा पहना हुग्रा है। ग्रपने प्यार के लिए मैं समाज से लड़ूंगी। यह झूठा लबादा उतार फैंकना ही मेरे लिए श्रेयस्कर होगा। वरना...वरना मैं जीवित नहीं बचूगी। मैं मर जाऊंगी।'

उसके ग्रंतःकरण में उठते विचार प्रवाह को एक ग्रन्य विचार ने चट्टान बन कर रोक दिया।

'ग्राज नवल हाईकोर्ट का जज है। क्या वह तुम्हें स्वीकार करेगा? उस समय उसके कन्धों पर समाज के प्रति कोई उत्तर-दायित्व नहीं था ग्रौर वह उम्र भी वैसी ही थी; परन्तु इस उम्र में ऐसा करना एकदम ग्रशोभनीय कृत्य है। ग्राज वह समाज के सम्मुख ग्रादर्श के रूप में है। तुम शादीशुदा हो जबकि तुम्हारी

एक बच्ची भी है, तुमको अपना कर उसकी प्रतिष्ठा को धब्बा नहीं लगेगा ? उसका उच्च नाम कलंकित हो क्षुद्र नहीं हो जाएगा ? समाज उसके नाम पर थूकेगा और उसे बदनाम करने वाली होगी तुम। तुम उसे बदनाम करके चौराहे पर लटका दोगी और वह ज़िंदगी भर उस बदनामी की सलीब पर लटका त्रासदी को भोगता रहेगा। समाज के सामने भावनाओं का कोई मूल्य नहीं होता। समाज प्रणय की भूमि पर अंकुरित मृदु भावनाओं को उसी प्रकार दग्ध कर देता है जिस प्रकार ग्रीष्म काल में दावानल सम्पूर्ण अरण्य को......'

'तब मैं क्या करूं ? यह सब कैसे सहा जाएगा ?' उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसका पोर-पोर सिसक रहा था। वह अपने आपको त्रिशंकु की तरह लटकी अनुभव कर रही थी।

'प्यार समर्पण का नाम है, त्याग का नाम है। प्यार में हमेशा देने की ही बात होती है। इच्छा कुछ भी नहीं की जाती। यदि प्यार में इच्छा की जोंक लग जाए तो वह वासनामय हो जाता है। तुम उसे पाने की लालसा कर रही हो......।'

'पर प्यार की सार्थकता भी तो तभी है जब दोनों पात्र एक-दूसरे को निज का समर्पण करते हुए एक हो जाते हैं; शून्य हो जाते हैं; अभिन्न हो जाते हैं। दो देह एक प्राण के समान; दो हाथों की एक ताली के समान; दो आंखों से देखे गए एक ही दृश्य के समान; दो कानों से सुनने वाले एक शब्द के समान...'

'समर्पण के उस स्वर्णिम अवसर को तुमने स्वयं ही ठोकर मार दी थी। काल से प्रेरित होकर; और जो समय एक बार चला जाता है वह पीछे मुड़ कर नहीं आता। यदि उसे लाने का प्रयत्न किया जाए तो उसके दुष्परिणाम ही निकलते हैं। विधाता

द्वारा रचित कार्य को चुनौती देने का साहस किस में है?'

'तब इस अपराध का प्रायश्चित क्या है? मैंने इतना जघन्य अपराध किया है। एक व्यक्ति की ज़िंदगी को तबाह कर दिया है। मैं इसका प्रायश्चित करना चाहती हूं। नवल के संतप्त जीवन को उल्लासमय करना चाहती हूं। अपने मन की व्यथाओं को, भीषण मानसिक यातनाओं को भोग लूंगी परन्तु उसे सुखी देखना चाहती हूं। उसकी ज़िंदगी में बहारें देखना चाहती हूं।

'तुम उसे विश्वास दिला सकती हो कि तुमने अपनी उस ग़लती का कितना बोझ अपने ऊपर ढोया है। उसी समय अपनी घोर ग़लती को महसूस कर, तुम उससे अनुनय-विनय करके उसे मनाने के लिए गई थी; पर काल को कुछ और ही स्वीकार था। वह यहां से हमेशा-हमेशा के लिए जा चुका था। तेरह वर्षों तक उसकी प्रतीक्षा में सिसकती रही, उसका ही नाम ले-लेकर। और यदि मां-बाप के समक्ष समाज तुम्हें कटु कटाक्षों से न बींधता तो तुम सारी ज़िंदगी भर उसका इंतज़ार कर सकती थी। आज भी तुम उसी अग्नि में दग्ध हो रही हो। तुम्हारा यही समर्पण उसके लिए सुखदायक होगा। अपने चारों ओर खिची परिधि की दुहाई देकर, अपनी असमर्थता प्रकट करके, उसे शादी के लिए विवश करो ताकि उसका नीरव जीवन रसमय हो सके। उसमें भी फूल खिल सकें। पतझड़ बने उसके जीवन में खुशियों की कोंपलें पल्लवित हो सकें। यही इस समय तुम्हारा प्रायश्चित है, तुम्हारा धर्म है, और यही तुम्हारा समर्पण है। उसको सुखी बनाना ही अब तुम्हारा कर्त्तव्य है।'

सृष्टि को भीतर से उठते विचारों का यह प्रवाह मोहित कर गया। अन्तर्द्वंद्व के मंथन से निकला यह विचार उसे अमृत कलश

सम ही लगा।

'हां ! यही ठीक है। मुझे सही मार्ग मिल गया है। मैं नवल के पास जाऊंगी। उसके प्यार की निशानी चश्मे की 'कमानी' उसे दिखाऊंगी। उसके चरणों में मस्तक रख अपने प्यार की दुहाई देती हुई, उसे शादी के लिए लाचार करूंगी। चाहे उसकी आयु कुछ अधिक हो गई है फिर भी ऐसे से कौन नारी शादी करना नहीं चाहेगी जिसके पास मान-सम्मान, प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा और प्रभावी व्यक्तित्व है।'

सृष्टि के मासूम हृदय में एक निःस्वार्थ कामना उठी कि वह अपने हृदय का समर्पण करती हुई नवल से एक बार......सिर्फ़ एक बार इतना अवश्य सुनना चाहेगी—

"सृष्टि मैं आज भी तुम्हें उतना ही प्यार करता हूं जितना अट्ठारह वर्ष पूर्व करता था। इस जन्म में न सही, हम अगले जन्म में अपनी 'नवल सृष्टि' रचाएंगे, बसाएंगे......"

सिर्फ़ एक बार ही यह सुन कर वह कृतकृत्य हो जाएगी। समझेगी, उसका नवल उसे मिल गया।

भीतर से गर्म पानी की बाढ़-सी वेग के साथ बाहर निकली जो आंखों के मरुस्थल को तर करती हुई कपोलों से बहकर बिस्तर में समाने लगी।

वह चश्मे की 'कमानी' को बार-बार चूमने लगी।



हमारे आगामी प्रकाशन :

उपन्यास :

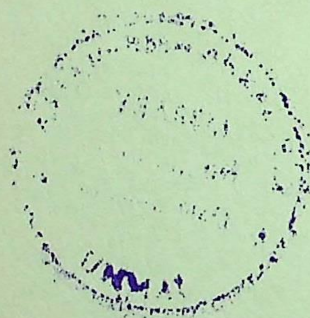
1. उल्टा आदमी	ओ० पी० शर्मा 'सारथी'
2. सुलगते देवदार	अशोक जेरथ
3. यातना युग	बलनील देवम्

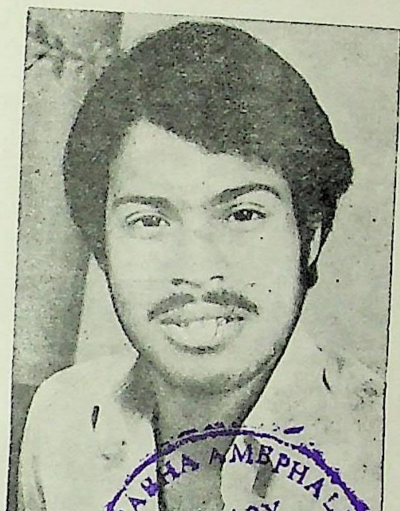
काव्य संग्रह :

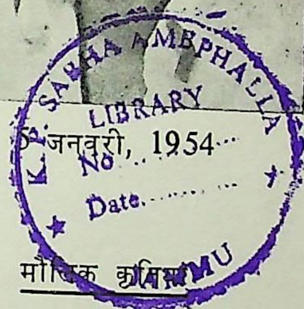
1. देश का अंतहीन दर्द	बलनील देवम्
2. कांच के नगर में	ओ० पी० शर्मा 'सारथी'
3. सत्ता की गर्भहीनता	ओ० पी० शर्मा 'सारथी'

अहिन्दी भाषी क्षेत्र का एकमात्र हिन्दी प्रकाशन संस्थान

निस्तंद्र प्रकाशन







K. P. SAHHA AMBPHALLA
LIBRARY
No.
Date.
MU

5 जनवरी, 1954

मौलिक क़ासिम

काव्य संग्रह

अन्तिम युद्ध की चाह

आग जल रही है

धूप की तरह खिला वर्तमान

कहानी संग्रह

उल्कापात

हमारे प्रकाशन

काव्य संग्रह :

अन्तिम युद्ध की चाह	बलनील देवम्	(अप्राप्य)
आग जल रही है	बलनील देवम्	20-00
धूप की तरह खिला वर्तमान	बलनील देवम्	10-00
बादलों में क़ैद सूर्य	आज़ाद कुमार मानव 'नाहर'	13-00
आहत चीड़ें	अशोक जेरथ	8-00
इस बार शायद	महाराज कृष्ण संतोषी	10-00
गिल्ला बालन (डोगरी काव्य)	वीरेन्द्र केसर	15-00

कहानी संग्रह :

उल्कापात (द्वितीय संस्करण)	बलनील देवम्	18-00
चेरी के फूल	अशोक जेरथ	13-00

अहिन्दी भाषी क्षेत्र का एकमात्र हिन्दी प्रकाशन संस्थान

निस्तंद्र प्रकाशन